भाव-पक्ष और कला-पक्ष

"इस ब्रह्माण्ड के प्रांगण में जब मानव ने नेत्रोन्मीलन किया उसने अपने आपको प्रकृति की रंगशाला में क्रीड़ा करते हुए पाया। जीवन के विभिन्न घटना चक्रों को देखकर उसका हृदय उद्वेलित हो उठा। उसने वाणी के प्रथम स्फुरण द्वारा अपने भावों को व्यक्त किया। कालान्तर में भाव-प्रेरित वाणी के साथ ही उद्गममयी कविता प्रस्फुटित हुई। वैदिक ऋचाएं इसकी साक्षी हैं। यहीं से काव्य- जगत का प्रादुर्भाव हुआ।"[1] इस उद्धरण का आशय यह है कि वेद ही हमारे आदि काव्य हैं। यह तथ्य असंदिग्ध है। संसार में वेदों से अधिक प्राचीन साहित्य अभी तक प्रकाश में नहीं आया है। इसलिए वेदों के आदि काव्य होने के सम्बन्ध में किसी प्रकार का विवाद अथवा मतभेद होने में संदेह नहीं। ऋग्वेद का अधिकांश स्तोत्रात्मक है। इसलिए यदि यह कहा जाय कि स्तोत्र के रूप में ही हमारे आदि वैदिक कवियों की वाणी अभिव्यक्त हुई थी तो इसे अनुपयुक्त अथवा असंगत नहीं कहा जा सकता। वैदिक मंत्रों के उद्गाता ऋषियों को कवि नाम से अभिहित किया गया है और स्वयं वेद में ही उनके विषय में कहा गया है "कवय: सत्य श्रुत:"। अर्थात् यह वैदिक ऋषि ऐसे कवि हैं जिन्होंने सत्य का मंथन और श्रवन किया है।

वेदों में जो स्तोत्र मिलते हैं उनकी कतिपय प्रमुख विशेषताओं का निरूपण इस प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में किया जा चुका है। वास्तव में ये स्तोत्र मानव-चेतना में उच्चाति उच्च स्तरों का उद्घाटन करते हैं और असत से सत, अन्धकार से प्रकाश और मृत्यु से अमृतत्व की ओर जाने का मार्ग

१- डा० प्रति पाल सिंह-- बीसवीं शती के महाकाव्य पृष्ठ १।

उद्घाटित करते हैं । इन स्तोत्रों में "मर्त्य में अमृत के अवतरण की मानव की निसर्ग अस्पृहा, अभीप्सा और अभ भावना का गुह्य अर्थ छिपा हुआ है। वस्तुत: इनमें स्तोत्र रचना की कला का परमोत्कृष्ट रूप प्राप्त होता है । अरविन्द ने भावी कविता का ~~स्वरूप-विवेचन~~ निरूपण करते हुए कहा है कि भावी कवि बहुत कुछ वेद-वाणी का अनुसरण करेगा ! तात्पर्य यह कि स्तोत्र काल के उद्गम का अविर्भाव मानवीय चेतना के ऊर्ध्व लोकों में हुआ है । विश्वनाथ कवि, पंडितराज जगन्नाथ मानते हैं कि अचित का आवरण भंग होने से मानव हृदय में सत्य का जो उद्रेक होता है वही काव्य के रूप में परिणिति प्राप्त करता है । यह कथन स्तोत्र-काव्य के विषय में स्तोत्र-काव्य पर पूर्ण रूपेण व्यवहृत होता है । डॉ० रामानंद तिवारी ने लिखा है --

" सत्य के उत्कर्ष में जीवन की ऊष्मा के सम्पर्क से जिस व्यापक करुणा में चेतना का प्रवण होता है वही कविता का प्रथम दर्शन है । जीवन की ध्वनि की पर तरंगित चेतना के इस प्रवाह में सांस्कृतिक विधानों के अनंत इन्द्र धनुष कल्पना-तूलिका से अंकित होते हैं । सत्य के मंगल-मय स्त्रवण की करुणा में कल्पना के ये चित्र विधान ही सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं । सत्य की भूमि पर मंगल की अति से सौंदर्य की सृष्टि ही कविता का पूर्ण रूप है । सत्य जीवन की स्थिति है । उसमें उज्ज्वल आलोक की समष्टि है किन्तु गति नहीं है । सत्य का उत्कर्ष होने के कारण ही अध्यात्मवादी दर्शन परम सत्य को अचल और अविकारी मानते रहे हैं । हिमाचल इसी सत्य के उत्कर्ष का प्रतीक है । जीवन की ऊष्मा के सम्पर्क से सत्य का हिमाचल विचलित होता है । करुणा काय ही स्त्राव कविता को आदि स्त्रोत है । आदि कवि का प्रथम उच्छ्वास इसी कविता के प्रवाह का प्रथम बिन्दु है । यही स्त्रवण ही शिवम् है । आत्मदान इसका स्वरूप है । आदि कवि की प्रेरणा बनकर यही आत्मदान सुंदरम् की सृष्टि करता है ।[1] सत्य के चरमोत्कर्ष से जो काव्य उपलब्ध होता है उसका एक सर्वोत्तम रूप स्तोत्र-

---

१- डॉ० रामानंद तिवारी- सत्यं, शिवं, सुन्दरम, पृ० १४६

काव्य हैं । उसमें सत्य , शिव और सुन्दर से युक्त समंडित कविता का पूर्ण रूप उपलब्ध होता है और आत्मदान के संगीतमय प्रवाह की रस विगलित सिद्धि भी इसमें सबसे अधिक होती है । स्तोत्र-काव्य को ब्रह्म तत्व के रसमय व्याख्यान कह सकते हैं । इसीलिए स्तोत्रात्मक काव्य के द्वारा काव्यशास्त्र की सीमाओं का बराबर विस्तार हुआ है । उसने काव्य-विवेचन को अनेक नए कला-उपादान प्रदान किए । मेरा विश्वास है कि चैतन्य-सम्प्रदाय के महान गोस्वामियों को सनातन, रूप, जीव, आदि को इसी कोटि के देवी साहित्य से चिन्मय रस-सिद्धान्त की प्रेरणा मिली थी ।

आदि कालीन स्तोत्र- साहित्य का कला पक्ष :

हिन्दी के स्तोत्र-साहित्य को संस्कृत स्तोत्र-साहित्य की प्राय: सभी विशेषताएं व्यक्त के रूप में प्राप्त हुई है । आदि कालीन साहित्य में स्तोत्रों के जो रूप उपलब्ध होते हैं उनकी चर्चा की जा चुकी है । इस स्तोत्र में साहित्य में हिन्दू देवी-देवताओं के अतिरिक्त जैनों और बौद्धों के देवी-देवता भी सम्मिलित हैं । इन स्तोत्रों की भाषा प्राकृताभास हिन्दी अथवा अपभ्रंश अथवा पुरानी हिन्दी है । रोला, उल्लाला, वीर, कव्व, छप्पय और कुंडलियां तथा दोहा अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी के प्रमुख छंद हैं । इस काल में जो स्तोत्र लिखे गए हैं उनमें भी प्राय: इन्हीं छंदों का प्रयोग हुआ है । जैन कवियों ने अपने काव्यों में लोक-प्रचलित फाग, चर्चरी आदि गीत-रूपों का भी प्रयोग किया है । इसीकाल में सिद्धों ने अपनी रहस्यमयी रचनाओं में "राग" नाम देकर पदों के लिखने की परम्परा चलाई थी । इनमें से कुछ रचनाओं में अद्भुत "नाद-सौंदर्य" है । विद्वानों का अनुमान है कि "मंगल" काव्यों की परम्परा भी इसी काल में आरम्भ हुई । सभी मंगल काव्य स्तोत्रात्मक हैं और उनमें प्राय: स्तोत्रों जैसी फलश्रुति भी रहती है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का अनुमान है कि वर्ण माला के अक्षरों से आरम्भ करके अखरावट जैसे स्तोत्रात्मक काव्य लिखने की परम्परा भी

इसी काल में प्रारम्भ हुई। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि स्तोत्रों की भूमिका पर अनेक परम्पराओं का प्रभाव पड़ा है। चन्दवरदाई ने तोटक, तोमर पद्धरी और नाराच आदि छंदों का भी प्रयोग किया है साथ ही साथ उसने संस्कृत और प्राकृत श्लोक लिखने का भी प्रयत्न किया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है --- संस्कृत वेसाटक या श्लोक छंद में लिखते हैं और प्राकृत गाहा (गाथा) में।

कला-पक्ष के उत्कर्ष की दृष्टि से इस काल के चार कवि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। स्वयंभू , पुष्पदंत, चन्दवरदाई, विद्यापति। स्वयंभू और पुष्पदंत अपभ्रंश के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। जैनोंके लिखे हुए काव्य की एक धारा पूर्णतया रहस्यवादी है। इसमें स्तोत्रकाव्य के सब लक्षण मिलते हैं। दूसरी प्रबंधकाव्यों की धारामें भी पुराण काव्यों में मंगलाचरण आदि के अनेक रूपों में स्तोत्र-काव्य मिलता है। स्वयंभू के लिखे हुए "पौमचरित्र और हरिवंश पुराण" में जो मंगलाचरण हैं और जो ऋषभदेव आदि और तीर्थंकरों की वन्दनाएं मिलती हैं उनमें भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों ही सम्यक समृद्ध हैं। पुष्पदंत के मंगलाचरण और स्तोत्र बड़ी अलंकृत शैली में लिखे गए हैं। उनका नाद-सौंदर्य विशेष रूप से हृदयावर्जक है :-

सिद्धिवहू मण रंजुण परमिण रंजुण भुवण कमल सरणेसरु।।
णाविवि विघ्नविणासणु णिरुव मसासुणु रिसहणाहु परमे सरु।।[1]

विद्वानों ने पुष्पदंत की तुलना माघ से की है। उन्होंने शब्द अर्थ की रमणीयता, अलंकृत चारुता पर बल देते हुए यह निर्दिष्ट किया है कि उसके कारण भाव-पक्ष दब सा गया है।[2] पूर्ववर्ती विवेचन में बताया जा चुका है कि चन्दवरदाई की एतद् विषयक रचनाओं में ओज गुण की प्रधानता है। चन्द के काव्य के स्तोत्रात्मक स्थल बड़े उदात्त हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने शब्दों को तोड़ मरोड़कर अपने भाव के अनुरूप

१- पुष्पदंत महापुराण पृ० १

२- देखिए- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास --- डा०राजबली पाण्डेय -- खण्ड १, तृतीय अध्याय पृष्ठ ३४१

नाद-सौंदर्य की सर्जना की किन्तु इस प्रकार उन्होंने अपनी भाषा की भावाभि-व्यंजकता क्षमता में वृद्धि ही की है। भाव का वहन करने में वह इतनी सरस है कि भाव व्यंजना की दृष्टि से उसे अद्वितीय ही कहा जा सकता है।

हिन्दी स्तोत्रसाहित्य के क्षेत्र में नखशिखवर्णन की परम्परा विद्यापति से ही प्रारम्भ होती है। कृष्ण और राधा विषयक वन्दनाओं में उन्होंने उनके सौंदर्यमय रूप को प्रमुखता दी है, जिसमें रहस्य संश्लिष्ट श्रृंगार ही वन्दना का मूलाधार है। इसके लिए विद्यापति पदावली का प्रथम और द्वितीय पद पर्याप्त होगा। प्रथम पद में कृष्ण की वन्दना है जिसमें यह व्यंजित है कि साधक-आत्मारूप गोपी से मिलने के लिए कृष्ण भी विकल हैं और अनाद[1] नाम रूपी मुरली बजाकर साधक का नित्याह्वान कर रहे हैं। द्वितीय पद में राधा की वन्दना है और उसमें सौंदर्य वर्णन का उद्देश्य यह जान पड़ता है कि व्यक्ति का मन लौकिक सौंदर्य तथा लक्ष्मी की अभिलाषा से हटकर उस अनुपम सौंदर्य में समा जाय[2]। राधा के रूप की व्यंजना तीन रूपों में हुई है ---- (१) विश्व भर के सौंदर्योपकरण से उसका निर्माण हुआ है। (२) करोड़ों कामदेव का मंथन करने वाले भगवान श्री कृष्ण भी मूर्छित होकर गिर जाते हैं। लक्ष्मी अपने को राधा के चरणों में न्योछावर किए देती है। कला पक्ष की दृष्टि से विद्यापति का मूल्यांकन करते हुए महाप्राण

१- नन्दक नंदन कदंबक तरु तर, धिरे धिरे मुरलि बजाव।
समय संकेत-निकेतन बइसल, बेरि बेरि बोलि पठाव ।।

भनइ विद्यापति सुन बरऑ मति बन्द इ नन्द किसोरी ।।

२- देख देख राधा रूप अपार, अपुरुब केविहि आनि मिलाओल
खिति - तल लावनि सार ।।२।।
अंगहि अंग अनंग मुरछायत हेरए पड़ए अधीर।
मनमथ कोटि-मथन करु जे जन से हरि महि माँधिगीर।
कत कत लखिमी चरन- तल नेओ छए रागिनि हेरि विभोरि।
करु अभिलास मनहि पद पंकज अहोनि सि कोर अगोरि ।।२।।

निराला ने लिखा है --- "विद्यापति कवि प्रतिभा में कालीदास,श्री हर्ष, शैली और शेक्सपियर से किसी तरह भी घटकर न थे । महाकवि की कृतियों में जो गुण होने चाहिए, वे सब उनकी सरस पदावली में मौजूद हैं।------ वह कल्पना की अत्युच्च भूमि पर विचरण करने वाले महान से भी महान थे । उनमें रस-ग्रहण की अद्भुत शक्ति थी। भावुकता के विचार से भी उनका आसन बहुत ऊँचा है ।[1] विद्यापति की स्तोत्रात्मक रचनाओं में भावपक्ष की ये सभी विशेषताएं असंदिग्ध रूप में मिलती हैं । इनकी रचनाओं में रति भाव की प्रधानता है ।

भक्तिकालीन स्तोत्र-साहित्य का कला पक्ष:

आदि काल के पश्चात् भक्ति काल का आरम्भ होता है । पहले ही यह प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं कि यह स्तोत्र-रचना का स्वर्ण युग है । स्तोत्र-रचना की कला इसकाल में चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुई । इस काल की विभिन्न धाराओं के प्रवर्तक संतों में कबीर का आविर्भाव सबसे पहले होता है । इनके पीछे निर्गुनियां कहे जाने वाले संतों की एक परम्परा चलती है । जिनके व्यक्तित्व और कृतित्व का अपेक्षित परिचय पहले दिया जा चुका है । इन संतों की वाणी ऊपर से देखने में भले ही अनगढ़ और अपरिमार्जित प्रतीत हो परन्तु वस्तुत: यह मानव के साधना सिद्ध हृदय की परमोच्च अभिव्यक्ति है । आंग्ल कवि शैली ने जिसे अनमेडीटेटेड आर्ट अथवा अकल कला कहा है । उसका यह स्पष्ट निदर्शन है । इन लोगों की वाणी में प्रार्थना, सुमिरनी, वंदना आदि के जो विविध रूप मिलते हैं उनकी चर्चा पहले की जा चुकी है । यहां उनके भावपक्ष और कला-पक्ष के विषय में संक्षिप्त निर्देश मात्र अपेक्षित है । वस्तुत: इन संतों की प्रार्थनाओं

1- निराला प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १४६, १५१,
शीर्षक-- विद्यापति और चंडी दास ।

में सर्वस्व-समर्पण, वैराग्य, का सार तत्व निहित है । ये लोग न किसी ऋद्धि-सिद्धि की कामना करते हैं, न किसी वेष का आग्रह रहते हैं । सतमतवादों को व्यर्थ मानते हैं और समस्त कर्म फलों की कामना छोड़ देने पर बल देते हैं । इसीलिए अपनी प्रार्थनाओं में केवल यह कहते हैं कि हे स्वामी मुझे केवल सत्य चाहिए, संतोष चाहिए, भाव भक्ति और विश्वास चाहिए। इसलिए मुझे यदि कुछ देना है तो धैर्य प्रदान करो, सच्चा भाव प्रदान करो और शुद्ध चित्त प्रदान करो । इसके अतिरिक्त हमें कुछ नहीं चाहिए ।

साईं सत संतोष दे भाव भगति विश्वास ।
सिदक सबूरि सांच दे, मागै दादू दास ॥
दादू दास ॥

दिन दिन नवतम भगतिदे, दिन दिन नवतम नाऊँ।
दिन दिन नवतम नेहदे, मैं बलिहारी जाऊं ॥
साईं संसय दूरि कर करि संध्या का नाश ।
नाहीं परगट ह्वै रहा है सो रहालुकाय
सैंया परदा दूरिकर तू ह्वी परगट आय ॥ दादू ॥

निष्कामता और निरीहता की मन:स्थिति तथा सरल निश्चल अभिव्यक्ति, क्या काव्य कला का श्रृंगार नहीं ?

इस प्रकार की प्रार्थना और विनती उनकी साधना का अनिवार्य अंग है । विनती भरे स्तोत्रों में इन संतों ने अपने अपराध को स्वीकार करते हुए अपने विचार व्यक्त किये हैं । उन्होंने अपने दोषों की अन्तहीनता का अनुभव किया है । इस प्रकार की रचनाओं में सात्विक भावाभिव्यक्ति अपनी अकृत्रिमता में अप्रतिम है ।

साईं सेवा यार मैं अपराधी वन्दा ।
दादू दूजा कोइ नहीं मुझ सरीखा गन्दा ॥१॥

दोष अनेक कलंक सब बहुत बुरा मुझ माहिं ।
मैं किए अपराध बहु तुम थै छाना नाहि ।।
गुनहगार अपराधी तेरा भागि कहाँ हम जाहिं ।
दादू देख्या सावु सब तुम बिन काहिं न समाहिं ।।

---- ।। दादू ।।

पतित उधारन बिरद तिहारो ।
जौ यह बात सांच है हरिजू, तौ तुम हमको पार उतारो ।।

---- चरनदास जी की बानी ---
भाग १, पृष्ठ- ५८ ।

इस चरम दैन्य के साथ इन संतों ने भगवान की जिस भक्ति की एक मात्र इच्छा की है उसकी भी इन्होंने बड़ी श्रद्धापूर्वक वन्दना की है:-

भगति निरंजन राम की अविचल अविनाशी ।
सदा सजीवन आतमा सहजै परकासी ।।

---- ।। दादू ।।

गोव्यदे तूं निरंजन तूं निरंजन तूं निरंजन राया ।
तेरे रूप नाहीं, रेख नाहीं, मुद्रा नहीं माया ।।

---- कबीर ग्रन्थावली, पृ० २१६ ।

इस भक्ति के मार्ग पर लगाने वाले होते हैं सद्गुरु। उन्हीं की कृपा से अन्तरात्मा का विकास होता है। उनका एक स्पर्श पारस पत्थर होता है जिस में पारस पत्थर की तरह चमत्कार होता है जिससे, लोहे को सोना बनाने की शक्ति होती है । इसलिए कबीर, दादू आदि सब संतों ने अत्यन्त भाव-विभोर होकर गुरु की वन्दनाएं लिखी हैं :-

सत गुरु सौं सहजै मिल्या, लिया कंठ लगाय ।
दाया भई दयाल की दीपक दिया जगाय ।।

----- ।।दादू ।।

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार ।
लोचन अनंत उघाड़ियां, अनंत दिखावण हार ।।

---- ।।कबीर ।।

गुरु की कृपा से भगवान को प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा की ज्वाला साधक के हृदय में जल उठती है । उसका इन संतों ने विरह और जरना माना है। उसकी वन्दना भी इन सन्तों ने अपनी साखियों में विरह को अंग और जरना का अंग के अन्तर्गत की है ।

वाला सेज हमारी रे, तूं आव हौं वारी रे
दासी तुम्हारी रे ।
तेरा पंथ निहारूं रे, सुन्दर सेज सवारूं रे
जियरा तुम पर वारूं रे ।।
तेराअंगना पेखों रे, तेरो मुखड़ा देखूं रे,
तब जीवन लेखों रे ।
तेरे प्रेम की माती रे, तेरे रंगडे राती रे
दादू वारणे जाती रे ।।

-----(विरह की आग)--
सं० वा० सं० भाग २ (दादू)

वस्तुत: यह विरह की आग ही ~~अरविंद~~ भगवद् प्राप्ति का अमोघ साधन है । विरह की जिस दुस्सह तपन का अनुभव इन संतों ने किया है किस लौकिक प्रेमी को वैसा अनुभव प्राप्त करने का सौभाग्य मिला होगा ?

अपनी स्त्रैणात्मक रचनाओं में इन संतों ने अपने को भगवान की प्रियतमा सुन्दरी मान कर जो भाव व्यक्त किए हैं वे काव्य कला का श्रृंगार हैं । उनकी ऊबड़-खाबड़ शब्दावली में संचित भावों की यह स्त्रैणोक्ति

ऐसी प्रतीत होती है जैसे किसी बीहड़ वन-प्रदेश में अमृत की अमरत्व प्रदायिनी स्त्रोतस्विनी प्रवाहमान हो ।

काहे न आवहु कंत घरि, क्यों तुम रहे रिसाए ।
पीव न देखा नैन भरि, जनम अमोलिक जाइ ।।

----- ।।दादू ।।

दरिया हरि किरपा करी, बिरहा दिया पठाय ।
यह बिरहा मेरे साध को सोता लिया जगाय ।।

--- संतबा०सं० १, पृ० १२६

इन सन्तों ने अपने को निष्कर्मी पतिव्रता भी कहा है -

पतिव्रता नांगी रहै, तो उसही पुरिस को लाज ।।
--।।कबीर ।।

इन संतों ने भगवान के लिए अभिहृद विशेषण का प्रयोग किया है जिसका अर्थ है कि वह अखंड, अनश्वर और अविच्छेद है ।

दादू अभिहृद आप हैं, अमर उपावन हार ।
अविनाशी आपै रहै, बिनसै सब संसार ।

अविगति अपरंपार ब्रह्म, ग्यान रूप सब ठाम ।
बहु विचार करि देखिया, कोई न सारिख राम ।।

-- कं० ग्र० पृ० २४१ । ६

इन सन्तों ने भगवान को अलख, अगुण और अरूप माना है फिर भी उनके स्वरूप के सम्बन्ध में बड़ी मार्मिक और प्रभावशाली उक्तियां कही हैं -

दादू अलख अलाह का, कहु कैसा है नूर ।
बेहद याका हद नहीं, रूप रूप सब धूर ।।
वार-पार नहि नर का दादू तेज अनंत ।
कीमति नहिं करतार की ऐसा है भगवंत ।।

---- ।।दादू ।।

जब भगवान् के इस अरूप रूप को इस अपरिसीम 'नूर' का दर्शन हो जाता है तो सम्पूर्ण जीवन आनन्द महोत्सव बन जाता है । इन संतों की साखियां इसकी साक्षी हैं । आनन्दोल्लास की यह अनुभूति संतों की भाषा और भाव दोनों में महासमुद्र की भांति लहरा रही है ।

अविगति अपरंपार ब्रह्म, ग्यान रूप सबठाम ।
बहु विचार करि देखिया, कोई न सारिख राम।।

---कबीर ग्रन्थावली, पृ०२४१।६

विगसि विगसि दर्शन करै पुलकि पुलकि रसपान ।
मगन गलित मातारहै, अरस परस मिलिपान ।।

देखि देखि सुमिरन करै, देखि देखि लवलीन ।
देखि देखि तन मन बिलै देखि देखि चित्त दीन ।।

निरखि निरखि निज नाउं लै निरखि निरखि रस पीव ।
निरखि निरखि पिव को मिलै निरखि सुख जीव ।।

निर्गुन धारा के संत कवियों के लिए काव्य-रचना साध्य न होकर आत्माभिव्यक्ति का साधनामात्र थी । वे अपने पदों को शुद्ध कविता या काव्य न मानकर आत्मानुभूति को कहने और समझने का साधन ही मानते हैं :-

तुम जिन जानौ गीत है, यह निज ब्रह्म विचार रे ।
केवल कहि समुझाइयां, आतम साधन सार है ।।

--- कबीर ।

उपर्युक्त विशेषता के कारण ही उन्होंने कवि कर्म के लिए कविता करना निरर्थक और व्यर्थ ही माना है[1] ऐसी स्थिति में उनके लिए यह स्वाभाविक ही था कि आत्माभिव्यक्ति की मस्ती में उन्हें इस बात की पर्वाह न रहतीथी कि उनकी रचनाओं में काव्य-शास्त्र के

१- कवी कवी ने कविता मूये, कापड़ी केदारो जाई ।

नियमों का पालन हो रहा है या नहीं। इस कारण हमारे अध्याय से सम्बन्धित इनकी अनेक स्तोत्रात्मक रचनाओं में भाषा सम्बन्धी भूलें अथवा काव्यालंकार सम्बन्धी अभाव तथा छंद-दोष आदि कहींकहीं पर दृष्टि-गोचर हो सकते हैं। फिर भी इन रचनाओं में उक्ति का चुटीलापन, मार्मिकता, प्रतीक-योजना काव्यालंकार के सुंदर प्रयोग आदि कलापक्षीय विशेषताएं भी वर्तमान हैं। इन्होंने चातक, मीन, सूर और सती आदि उपमानों के बड़े ही सटीक प्रयोग किए हैं। डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल जी के शब्दों में "निर्गुणियों की काव्य-रचना सम्बन्धी सफलता उनके रूपात्मक प्रेम संगीत, विनय तथा आंनदो-द्रेक में देखी जाती है क्यों कि उन्हीं में उनकी आंतरिक अनुभूति का पता चलता है, तथा सौंदर्य, प्रेम एवं सत्य की त्रयी की अभिव्यक्ति भी उन्हीं में होती है[1]।

छन्द -योजना के दृष्टिकोण से इन कवियों ने आदि मंगल, रमैनी, शब्द, ग्यान चौंतीसा, विप्रमतीसी, कहरा, बसंत, चाचर, बेलि, बिरहुली, हिंडोला, तथा साखी आदि काव्य रूपों के प्रयोग किए हैं। कबीर ग्रंथावली में पदों के गेय रागों का निर्देश है और यहां तक कि रमैनी का भी राग 'सू ही' निर्दिष्ट है[2]। इस धारा के अन्य कवियों ने प्राय: कबीर की ही शैली का ही अनुगमन किया है। इस धारा के कबीर जैसे कवियों की साहित्यिक देन उलटवासियों के सफल प्रयोगों की है जिनमें शब्दों के गूढ़-कथन के द्वारा की गयी भावाभिव्यक्ति भाषा को दुरूह बना देती है किन्तु उसकी अपनी निजी कलात्मक विशेषता नि:संदिग्ध है। वैसे तो परमात्मतत्व आदि के वर्णन में रूपक आदि के सफल प्रयोग इन कवियों में हुए हैं किन्तु प्रस्तुत अध्ययन के दृष्टिकोण से भी यह कहा जा सकता है कि

१- डा० पीतम्बर दत्त बड़थ्वाल-- हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय
हिन्दी संस्करण पृ० ३४८

२- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य का आदि काल

स्त्रोत्रात्मक अंशों में भी उन्हें यत्र-तत्र देखा जा सकता है । कबीर का निम्नलिखित उदाहरण इसके लिए पर्याप्त होगा -

नैनाली फर लाइयां, रहट जैस निरुपाय ।
पपीहा ज्यूं पिव पिव करौं, कबरु मिलहुगे आय ।।
-- कबीर - विरह को अंग-२४ ।

उपर्युक्त विवेचन के निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि भले ही इन कवियों की सतर्क दृष्टि की कलापक्ष की ओर न रही हो, किन्तु अनेक स्त्रोत्रात्मक रचनाओं में कलात्मकता, अनुभूतियों का अनुगमन करती हैं । रस के विचार से ये रचनाएं शान्तरस प्रधान हैं किन्तु भाव-विभोर अवस्था में अनेक स्त्रोत्रात्मक उक्तियों के अन्तर्गत माधुर्य रस की भी सुंदर अभिव्यंजना हुई है ।

सूफी कवियों की स्त्रोत्रात्मक रचनाओं और उनके कवित्व का विवेचन पूर्व अध्याय में किया जा चुका है । इन कवियों ने अपने सिद्धान्तों में प्रेम-गाथाओं के माध्यमसे स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है और इस प्रकार सम्पूर्ण वर्णन प्रतीकात्मक बन गया है । यह हम वहां लक्ष्य कर चुके हैं । यों सूफी कवियों में ब्रह्म का सौंदर्य और प्रेम ही लिया गया है उसमें कान्तामाव की प्रधानता है । परन्तु यह कान्तामाव कृष्ण-भक्ति के माधुर्य भाव से भिन्न है । उनके ब्रह्म का प्रकाश सम्पूर्ण संसार में दीपित होता है । वह अनाम और अजन्मा है --

अलख अकेल,सबद नहिं भाती ।
सूरुज, चांद, दिवस नहिं राती ।
आखर, सुर, नहिं बोल अकारा,
अकथ कथा का कहौं बिचारा ।।[१]
--- अखरावट ।

१- आचार्य शुक्ल -- जायसी ग्रन्थावली,पृष्ठ ३०४

वह परमात्मा असीम गुणों वाला है और उसकी सृष्टि रचना अपार है ।

पद्मावत में जायसी ने लिखा है --

सात सरग जौं कागर करई ।
धरती सात समुंद मसि भरई ।।२।।

सब लिखनी कह लिखि संसारू ।
लिखि न जाइ गति समुंद अपारू ।।

------ स्तुतिखण्ड ।

जायसी बहुश्रुत थे । अत: उन्होंने अन्य धर्म के ग्रन्थों के भाव ग्रहण किए हैं । उपर्युक्त से मिलता जुलता भाव पुष्पदन्त के श्लोक में भी है --

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिंधु पात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ।।

- ---- पुष्पदन्त ।

"इसी से (~~पुष्पदंत श्लोक से~~) मिलता ~~जुलता~~ हुआ भाव कुरान के सूरे कहफ में भी मिलता है" ।

---डा० वासुदेवशरण अग्रवाल--
पद्मावत-- स्तुतिखण्ड ।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस विषय में लिखा है --"सूफी सारे व्यक्त प्रसार को ब्रह्म से विमुक्त मानते हैं और उसमें जहां जहां आनंद सुख आदि है वहां वहां ब्रह्म की सत्ता स्वीकारते हैं । जायसी ने शांकर अद्वैत की भांति आत्मा और ब्रह्म की एकता का भी आभास दिया है ------ "सिद्धान्त की दृष्टि से सूफीमत भारत के विशिष्टाद्वैत मत से मिलता है किन्तु जायसी ने मायारूप में सृष्टि व्यापार की कल्पना करके अपने को वेदान्त के अधिक निकट कर दिया है ।१

१- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र- हिन्दी साहित्य का अतीत भाग १ पृष्ठ १७२

यह विवेचन निम्नलिखित प्रतीक से सिद्ध हो जाता है ---

तन चित उर मन राजा कीन्हा ।
हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा ।।
गुरु सुआ जेहि पंथ देखावा ।
बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा ।।
नागमती यह दुनिया धंधा ।
बांचा सोइ न एहि चित बंधा ।।
राघव दूत सोइ सैतानू ।
माया अलादीन सुलतानू ।।[1]

जायसी ने संयोग और वियोग दोनों में ही प्रेम के आध्यात्मिक पक्ष का विवेचन किया है । वियोग पक्ष में समस्त संसार ही विरह विदग्ध होने लगता है --

विरह के आगि सूर जरि कापा ।
रातिउ दिवस जरै ओहि तापा ।।

मंझन जीव को ही इस सृष्टि का केन्द्र विन्दु मानते हैं और उसे सृष्टि के गृह में दीपक का रूप देते हैं । समस्त सृष्टि में वही विद्यमान है और उसी का प्रकाश त्रिभुवन में प्रकीर्ण होता है --

तोर बदन तिरभुवन अंजोरा ।
सकल सिस्टि मुख दरपन तोरा ।।
तोहियं जोति सकल परगासा ।
मिर्तुलोक पाताल अगासा ।।
सकल सिस्टि मंह परगट तुहीं ।
सरब्ब तुंह दोसर कोइ नहीं ।।
जो कोइ खोज सोइ पै जोवा ।
सोका जीइ जेहिं नहीं किछु खोवा ।।[2]

१- आचार्य शुक्ल -- जायसी ग्रन्थावली पृ० ३०१
२- डा० माता प्रसाद गुप्त--मधुमालती भूमिका पृ० २१

संतों की भांति इन्होंने भी प्रतीकात्मक चरित्रों के माध्यम से प्रार्थना की है । वे भी ईश्वर से किसी बात की आकांक्षा नहीं करते हैं --

ना हौं सरग कं चाहौं राजू ।
ना मोहिं नरक सेंति किछु काजू ।।
चाहौं ओहिकर दरसन पावा ।
जेह मोंहि आनि प्रेम-पथ लावा ।।

---पद्मावत ।

भाव पक्ष की दृष्टि से आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे दूरारूढ़ प्रेम माना है । जैसा वे कहते हैं "दूरारूढ़ प्रेम में प्रिय के साक्षात्कार के अतिरिक्त और कोई (सुख आदि की) कामना नहीं होती। ऐसा प्रेम प्रिय को छोड़ किसी अन्य वस्तु का आश्रित नहीं होता ।[१]

प्रेम की प्राप्ति से दृष्टि आनन्द मयी हो जाती है और चारों ओर सौंदर्य का भास होने लगता है । रत्नसेन की अवस्था जायसी ने इसी प्रकार स्पष्ट की है --

तीन लोक चौदह खण्ड, सबै परे मोहिं सूझि ।
प्रेम छांड़ि नहीं लोनकछु, जो देखा मन बूझि ।।

-- पद्मावत ।

जिन आध्यात्मिक तत्वों का अनुभव तर्क बुद्धि से किया जाता है उन्हीं का अनुभव अनुपम की रागात्मिका वृत्ति पूर्ण शुद्धता प्राप्त कर लेती है । जोगीभी होते हुए राजा के मुख से अमरधाम का संकेत कराया गया है --

हौं रे पथिक पखेरू, जेहि बन मोर निबाहु ।
खेलि-चला तेहि बनकहं, तुम अपने घर जाहु ।।

---- जायसी ग्रन्थावली भूमिका पृ०६०

सूफी कवि प्रेम का आधार गुरु के सहयोग से मानते हैं । गुरु भगवत्प्रेम की अल्प ज्योति दे देता है जिसका विस्तार करना शिष्य का कर्म

१- आचार्य रामचंद्र शुक्ल -- जायसी ग्रन्थावली भूमिका पृ० ६६-६७

हो जाता है -

गुरु विरह - चिनगी जो मेला ।
जो सुलगाइ लेइ सो चेला ।।

---- पद्मावत ।

जब अन्त:करण में प्रेम की दीप्ति हो जाती है तो साधना के मार्ग में नाना प्रकार केसंकट उत्पन्न होते हैं । प्रेम साधना के मार्ग में कीट आदि की प्रतीक योजना भी इसी कठिनाई की अभिव्यक्ति है[1]।

सूफियों के साहित्य का सबसे अधिक कलात्मक पक्ष उनका 'नखशिख' कहा जा सकता है । इसके आध्यात्मिक आधार एवं प्रतीक योजना का स्पष्टीकरण पूर्ववर्ती अध्याय में किया जा चुका है । उसी प्रतीक-योजना की पृष्ठभूमि में 'नखशिख' को स्तोत्रात्मक माना जाता है । आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र भी इस बात को मानते हैं कि ------------" पद्मावत के अध्ययन की परम्परा में यह बात स्वीकृत थी कि सारी रचना आन्या प्रदेशिक है[2]। इन सूफी कवियों ने अपने आराध्य को 'प्रियतमा' के रूप में माना है और उसके सौंदर्य को अपरिमेय, अलौकिक और दिव्य बताया है । इसके लिए इन कवियों ने रूपकों की सुन्दर योजना स्थान-स्थान पर की है । कला पक्ष की दृष्टि से यह रूपकात्मक योजना महत्वपूर्ण है । "ईश्वर को प्रेमिका मानकर उसके लिए जीवन की आकुलता का वर्णन वैष्णव, सहजयान, सूफी मत या ईसाई मत सबकी विशेषता है । सब धर्म इसमें एक मत हैं कि स्त्री से बढ़कर स्फुट, साक्षात् प्रियमय और मधुर प्रतीक हमारे इस लोक में पुरुष के लिए दूसरा नहीं है । उसी प्रतीक की व्यंजना से प्रेम मार्ग और प्रेम-काव्य के अकरणों का निर्माण किया । रसात्मक प्रसंगों में अधिकांशत: भाव के

१- उसमान ---- चित्रावली पृ० ७६
जाइ सोइ जो जिउ पर तेजा, बार पासुली लोह करेजा ।
तैं अबही घट आपन बूझा, बार देखि पिछवारन सूझा ।।

२- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र-- हिन्दी साहित्य का अतीत पृ० १७४ प्रथम खण्ड

अनुरूप ही मनुरंजनकारी अप्रस्तुत वस्तुओं की योजना की गई है और सादृश्य-मूलक अलंकारों का अधिक आश्रय लिया गया है । 'नख-शिख' वर्णन में स्वरूपोत्प्रेक्षा के साथ-साथ क्रियोत्प्रेक्षा का भी प्रयोग किया गया है --

असि बेनयन चक्र दुइ, भंवर समुद उलथाहिं ।
जनु जिउ घालिहिं डोलभएं लेइ आवहिं लेइ जाहिं ।।[१]

जायसी की हेतूत्प्रेक्षाएं अधिकतर असिद्ध विषया ही हैं । रूप-वर्णन के अन्तर्गत फलोत्प्रेक्षा का भी प्रयोग हुआ है । कहीं कहीं 'व्यतिरेक' अलंकार का भी आश्रय लिया गया है --

का सरवरि तेहि देउं मयंकू । चांद कलंकी वह निकलंकू ।
औ चांदहि पुनि राहु गरासा । वह बिनु राहु सदा परगासा ।।
-- पद्मावत ।

दांतों के वर्णन में तृतीय निदर्शना और रोमावली के वर्णन में खंडित संदेहालंकार का प्रयोग किया गया है --

मनहुं चढ़ी भौंरन्ह कैपांती । चंदन खांभवास कै माती ।
की कालिंदी विरह सताई । चलि पयाग अरइल बिच आयी ।।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे खंडित इसलिए कहा है क्यों कि 'संदेह में दो कोटियां होनी चाहिए और दोनों कोटियों में समानरूप से ज्ञान होना चाहिए । यहां एक ही कोटि है, चौपाई के पिछले दो चरणों में । चौपाई के प्रथम दो चरणों में तो उत्प्रेक्षा है । अत: संदेहालंकार सिद्ध नहीं है, खंडित है ।'[२]

१- डा० वासुदेव शरण अग्रवाल------ पद्मावत भूमिका- पृ० ५१
२- आचार्य रामचंद्र शुक्ल --------- जायसी ग्रन्थावली,
नखशिख खंड ।

जायसी ने कहीं कहीं पर श्रृंगार वर्णन में वीर रस की भी सामग्री उपस्थित कर दी है --

सेंदुर आगि सीस उपराही ।
पहिया तरिवन चमकत जाहीं ।।
कुच गोला दुइ हिरदय लाई ।
अंचल भुजा रहैं छिटकाई ।।
रसना लूक रहहिं मुख खोले ।
लंका जरै सो उनके बोले ।।
अलक जंजीर बहुत गिउ बांधे ।
खींचहि हस्ती टूटहिं कांधे ।।[१]

इन अलंकारों के अतिरिक्त जायसी ने यमक, अनुप्रास, उपमा, रूपक, परिणाम, विनोक्ति, संबंधातिशयोक्ति, श्लेष एवं मुद्रालंकारों का भी प्रयोग किया है।-

सम्पूर्ण प्रेम-गाथाओं में रति भाव की प्रधानता है और उनमें लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम के लक्ष्य की पूर्ति की गई है । आचार्य राम चंद्र शुक्ल ने लिखा है --- "लौकिक प्रेम पथ के त्याग,कष्ट सहिष्णुता तथा विघ्नताओं का चित्रण करके कवि ने भगवत्प्रेम की उस साधना का स्वरूप दिखाया है जो मनुष्य की वृत्तियों को विश्व का पालन और रंजन करने वाली उस परम वृत्ति में लीन कर सकती है"।[२] जायसी आदि का सम्पूर्ण काव्य प्रतीकात्मक है और इस मांसल शरीर के हृय-वर्णन में ही आध्यात्मिकता की सृष्टि करता है । डा० माता प्रसाद गुप्त ने लिखा है -------"मेरी समझ में इसका उत्तर यही है कि इन संतों ने जीवनको एक समग्र रूप में देखा है । उनका जीवन - दर्शन शारीरिक आवश्यकताओं की उपेक्षा नहीं करता है ,यह अवश्य है कि वह शारीरिक आवश्यकताओं को मर्यादित रखने का

१- आचार्य रामचंद्र शुक्ल -----जायसी ग्रन्थावली,नखशिख खण्ड ।
२- आचार्य रामचंद्र शुक्ल -----जायसी ग्रन्थावली भूमिका पृ० २०६।

उपदेश करता है । इस शारीरिकता के अभाव में पुरुष और नारी की प्रेम-कल्पना मिथ्या होती है, इसीलिए सूफी साधकों की यह मर्यादित शारीरिकता उनकी आध्यात्मिक प्रेम-साधना का एक ऐसा अंग है जो उनकी दृष्टि में उनके लक्ष्य में बाधक नहीं होता ।[१] परन्तु डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल प्रेममार्गी साधना को कामी पुरुष की नारी के प्रति आकर्षण की भावना मानते हैं । उनके अनुसार "प्रेम मार्गी साधना का तात्पर्य है आध्यात्म के प्रति वैसा ही तीव्र आकर्षण जैसा कामी को नारी के प्रति होता" ।[२] इस आकर्षण में मन हृदय दोनों अपने प्रेम तत्व से तन्मय एक या अभिन्न हो जाते हैं । यह मिलन शरीर सुख के लिए क्षणिक नहीं होता, किन्तु सदा सदा के लिए, कवि के शब्दों में जन्म जन्म के लिए होता है । देश और काल इस सम्मिलन में आध्यात्म तत्व के साक्षात् दर्शन के आनंद को किसी प्रकार तिरोहित नहीं कर सकते । वही आध्यात्म दर्शन सच्चा है । जो कुछ भी हो प्रेममार्गी कवियों का इस प्रकार का प्रेम प्रदर्शन भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों ही दृष्टियों से उच्चकोटि का है ।

सगुण मार्गी राम भक्त कवियों में तुलसीदास जी का स्थान सर्वोपरि है । वे केवल कवि भक्त एवं संत ही नहीं थे वरन् भारतीय जनता के सच्चे प्रतिनिधि भी थे । उनकी भक्ति भावना लोक कल्याण केलिए थी और संसार के भले बुरे पक्षों की विषमता को देखकर उन्होंने इस बात को महत्व दिया था --

सुधा सुरा सम साधु असाधू । जनक एक जग - जलधि अगाधू ।

----- मानस ।

१- डा० माता प्रसाद गुप्त---- मधुमालती भूमिका पृ० २६

२- डा० वासुदेव शरण अग्रवाल--पद्मावत भूमिका पृ० ४६

२- कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमिदाम ।
तिमि रघुवंश निरन्तर लागउ प्रिय मोहि राम ।।

--- दोहावली ।।

गोस्वामी जी का स्तोत्र-साहित्य और उसकी दार्शनिक पीठिका का विवेचन पूर्व अध्याय में किया जा चुका है । यहां उसके भाव-पक्ष और कला-पक्ष का संक्षिप्त निर्देशन मात्र अपेक्षित है ।

गोस्वामी जी ने संसार को राममय न कहकर सियाराम मय कहा है । आचार्य शुक्ल ने इसका कारण इस प्रकार दिया है ----"जगत को केवल राममय न कहकर उन्होंने 'सियाराम-मय' कहा है ।सीता प्रकृतिस्वरूपा हैं और राम ब्रह्म हैं, प्रकृति अचित् पक्ष है और ब्रह्म चित् पक्ष । अत: पारमार्थिकता सत्ता चिद् चिद्विशिष्ट है । यह स्पष्ट झलकता है । चित् और अचित् वस्तुत: एक ही हैं । इस का निर्देश उन्होंने निम्नलिखित दोहे में किया है ---

गिरा अर्थ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न ।
बंदौं सीताराम-पद जिनहिं परम प्रिय खिन्न ।।[1]

बहुदेवोपासना की असारता दिखाने के लिए ही उन्होंने रामोपासना की प्रतिष्ठा की थी। उनके राम परमब्रह्म अजन्मा, और अनाम होने पर भी दशरथ तनय हैं । महाराज जनक ने राम से विदा के समय कहा था --

करहिं जोग जोगी जेहि लागी ।
कोहु मोहु ममता मद त्यागी ।।
व्यापकु ब्रह्मु अलखु अबिनासी ।
चिदानंदु निरगुन गुनरासी ।।

---अयोध्याकाण्ड ।

मायाके वशीभूत होकर ही मनुष्य ब्रह्म को भूल जाता है । विद्या से संसार की रचना होती है और अविद्या से संसार नष्ट हो जाता है । काकभुशुण्डि- गरुड़ सम्वाद से यह भाव स्पष्ट हो जाता है ---

मायावस्य जीव अभिमानी। ईसवस्य माया गुनखानी ।
परबस जीवन स्वबस भगवन्ता। जीवअनेक एक भगवन्ता ।।

--- उत्तरकाण्ड ।

१- आचार्य रामचंद शुक्ल --- हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १३२

वास्तव में तुलसीदास जी का 'मानस' राम के अनन्त, दिव्य, सर्वान्तर्यामी एवं सच्चिदानंद रूप का स्पष्टीकरण करता है --

सुद्ध सच्चिदानन्दमय कन्द भानुकुल केतु ।।

तुलसीदास जी ने ज्ञान और भक्ति का परस्पर समन्वय किया है और दोनों की वैचारिक विभिन्नता को व्यर्थ बताया है । इसे राम और कागभुशुण्डि के सम्बाद में राम द्वारा कहलाया गया है --

भगति ज्ञान विज्ञान विरागा । जोग चरित्र रहस्य विभागा ।
जानब तैं सबहीं कर भेदा । मम प्रसाद नहिं साधन खेदा ।।

भगतिहिं ग्यानहिं नहिं कछु भेदा । उभय हरहिं भव सम्भव खेदा ।

शबरी के द्वारा 'नवधा भक्ति' का भी स्वरूप गोस्वामी जी ने स्पष्ट कराया है --

प्रथम भगति सन्तन्ह कर संगा । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ।
गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान ।
चौथी भगति मम गुनगनन करइ कपट तजि गान ।
मन्त्र जाप मम दृढ़ विश्वासा । पंचम भजन सो वेद प्रकासा ।।
छठवम सील विरति बहुकरमा । निरत निरंतर सज्जनधरमा ।।
सॉतव सम मोहि मय जग देखा । मोतें अधिक सन्तकर लेखा ।।
ऑठवं जथा लाभ सन्तोषा। सपनेहुं नहिं देखइ परदोषा ।।
नवम सरल सब सन छलहीना । मन भरोस हिय हरष न दीना।।

---- अरण्यकाण्ड ।

१- आचार्य रामचंद्र शुक्ल -- हिन्दी साहित्य का इतिहास

पृष्ठ १३२ ।

वस्तुत: प्रभु प्राप्ति के नौ सोपान हैं जिन्हें पार कर उसकी प्राप्ति हो सकती है । सेवक और सेव्य भाव ही सर्वोत्कृष्ट भक्ति का रूप है --

सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि ।
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धान्त विचारि ।।

---उत्तरकाण्ड ।

वस्तुत: उनका दैन्य प्रकृतिगत और भावाश्रित है । स्वयं तुलसीदास जी ने कहा है --

छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई ।
सुनिहहिं बाल-वचन मन लाई ।।
कवि न होउं , नहिं बचन प्रबीनू ।
सकल कला सब विद्या हीनू ।।

--- बालककाण्ड ।

उनका दैन्य इष्टदेव के महत्व से प्रेरित है और उसमें मृदुलता का भाव है। उत्तरकाण्ड में भरत जी राम के आगमन पर तर्क वितर्क करने के पश्चात् यह मान लेते हैं ---

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ ।
दीन बन्धु अति मृदुल स्वभाऊ ।।

तुलसीदास जी के राम का प्रधान लक्षण धीरता, गंभीरता और कोमलता है । यह उनका रामत्व है । वे शरणागत की रक्षा का भाव करुण परिस्थिति के समय में भी नहीं छोड़ते हैं । लक्ष्मण के शक्ति लगने पर राम का विलाप इसी प्रकार का है ।[1] गोस्वामी जी ने भरत ऐसे पात्रको भी

१- मेरो सब पुरुषारथ थाको ।
विपति बँटावत बंधु बाहु बिनु करौं भरोसो काको ?
सुनु सुग्रीव साँचहू मो सन फेरयो बदन विधाता ।
ऐसे समय समर-संकट हौं तज्यो लखन सो भ्राता ।

श्रेष्ठता का वर्णन किया है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है -- "जिन भरत को अयश की इतनी ग्लानि हुई, जिनके हृदय से धर्म-भाव कभी न हटा, उनके नाम के स्मरण से लोक में यश और परलोक में सुख दोनों क्यों न प्राप्त हों ?[1]

भरत को इतनी ग्लानि होती है कि वे राम से मिलने पर भी अपनी बात नहीं कह पाते हैं ---

मैं प्रभु-कृपा-रीति जिय जोही । हारेहु खेल जितावहि मोही ।।
महूं सनेह-सकोच-बस, सनमुख कहेउ न बैन ।
दरसन-तृषित न आजु लगि प्रेम-पियासे नैन।।
----अयोध्याकाण्ड ।

गोस्वामी जी ने शील का सर्वत्र निर्वाह किया है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल हृदय की शुद्धता पर बल देते हैं । क्यों कि --- "शील के लिए सात्विक हृदय चाहिए ।"[2] रामायण का गूढ़ रहस्य "शील और नियम , आत्मपक्ष और लोक-पक्ष के समन्वय द्वारा धर्म की यही सर्वतोमुख रक्षा रामायण का गूढ़ रहस्य है ।[3]

इसी प्रकार यदि विनयपत्रिका के भावपक्ष पर विचार किया जाय तो वह भी उच्चकोटि का है । विनय-पत्रिका में विनय की सातों भूमिकाओं का निर्वाह हुआ है जो निम्नलिखित हैं --

(१) दीनता (२) मानमर्षता (३) भयदर्शना
(४) भर्त्सना (५) आश्वासन (६) मनोराज्य
(७) विचारणा ।

वन्दना-प्रकरण में ही प्रभु के औदार्य, शील और महत्व को स्पष्ट करते हुए जीव के असामर्थ्य को दिखाते हुए दैन्य निवेदन किया है । मर्षता में

१- आचार्य रामचंद्र शुक्ल -- गोस्वामी तुलसीदास पृ० १२१
२- ,, ,, -- ,, ,, पृ० १२३
३- ,, ,, -- ,, ,, पृ० १२४

भक्त निरभिमानी बनकर भगवान् की शरण में जाता है --

काहे तैं हरि मोहि बिसारो ।
जानत निज महिमा मेरे अघ, तदपि न नाथ संभारो ।
पतित पुनीत दीन हित असरन-सरन कहत श्रुति चारो ।।
------ विनय-पत्रिका ।

भयदर्शना में मन को नाना प्रकार का भय दिखाकर उसे इष्ट देव की ओर उन्मुख किया जाता है --

मारग अगम, संग नहिं संबल , नाउं गाउं कर भूला रे ।
तुलसिदास भवत्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला रे ।। १ ।।
---- विनय पत्रिका ।

भर्त्सना में मन को सांसारिक माया-मोह से दूर रहने के लिए भला-बुरा कहर कर इष्टदेव की ओर प्रवृत्त किया जाता है --

ऐसी मूढ़ता या मन की ।
परिहरि राम भगति सुरसरिता आस करति औरन की ।
^ ^ ^ ^
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की ।।६।।

आश्वासन में भक्त प्रभु पर ही आश्रित होकर उसकी भक्ति करता है और अपने उद्धार की कल्पना करता है --

ऐसो को उदार जगमाहीं ?
बिनु सेवा जो द्रवै दीनपर राम सरिस कोउ नाहीं ।।१६२।।
--- विनय-पत्रिका ।

मनोराज्य में भक्त अपनी अनेक आशाओं की पूर्ति की कामना करता है --
कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपातें सन्त सुभाव गहौंगो ।
जथा लाभ सन्तोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो ।
^ ^ ^ ^
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरिभक्त लहौंगो ।।१७२।।

विचारणा में असारता की ओर संकेत करके ब्रह्म में लीन होने के लिए मन को प्रोत्साहित किया जाता है --

केशव कहि न जाइ का कहिये ।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहिए ।।१११।।

इस प्रकार `विनय पत्रिका` का आत्म निवेदन उच्चकोटि का है । दार्शनिक तत्वों के विषय में पूर्व अध्याय में ही स्पष्ट किया जा चुका है ।

यदि रामचरितमानस के कला पक्ष पर विचार किया जाय तो मानस का `नखशिख` वर्णन विशेष उल्लेखनीय है । स्तोत्रों का सबसे महत्व-पूर्ण पक्ष नखशिख है जिसे तुलसीदास जी ने अपनी कला से चरमोत्कर्ष रूप दिया है । नखशिख-वर्णन दो रूपों में होता है--(१) शिखनख (२) नखशिख। डा० बल्देव प्रसाद मिश्र ने इस विषय में लिखा है -- "जब हृदय श्रद्धा प्रवण होता है तब वह नखशिख देखता है अर्थात् उस समय उसकी दृष्टि अपने इष्टदेव के चरणों (नख) से चलकर मुख (शिख) तक पहुंचती है । जब हृदय प्रेम-प्रवण होता है तब वह शिखनख देखता है अर्थात् उस समय उसकी दृष्टि अपने इष्टदेव के मुख की ओर पहले जाकर फिर नीचे उतरती है श्रद्धा बढ़ती गई तो वह चरणों तब पहुंच जाती है ।[१] राम की अनन्यता के कारण ही तुलसीदास जी ने उनका नखशिख विस्तार से लिखा है । `मानस` में ऐसे सात स्थल हैं जिनमें रामका नखशिख-वर्णन हुआ है । "पहला नखशिख है उस रूपका, जिसे मनु-शतरूपा ने देखा था । दूसरा है उस रूप का, जिसे कौशल्या ने पहले पहल देखा था। तीसरा वह है जिसने मिथिला वालों का हृदय आकृष्ट किया, चौथा वह है जिसने फुलवारी में सीताजी और उनकी सखियों का ध्यान आकृष्ट किया और पांचवा वाह है, जिसने धनुषयज्ञ में पुरवासियों की आंखें आकृष्ट कीं । छठा नख-शिख है दूल्हा बने हुए श्रीरामचंद्र का, जिसने सीताजी के हृदय में घर कर लिया । सातवां नखशिख है बालक रूप राम का जिन्हें भुसुण्डि

१- डा० बल्देव प्रसाद मिश्र-- मानस माधुरी, पृ० ६५

ने देखा और उनके मन में बसे हुए हैं । तीसरा, चौथा और पाँचवां नख-शिख अधूरा सा ही है । व्यर्थ की पुनरावृत्ति गोस्वामी जी ने रामचरित-मानस में कहीं की ही नहीं ।[१]

मिथिला के बालकों ने उन्हें अपने समवयस्क ही देखा था और उनकी दृष्टि राम की कटि से शिर तक गई थी और उन्हें आनंद का अनुभव किया था। वह रूप इस प्रकार है --

पीतवसन परिकर कटिमाथा । चारुचाप सर सोहत हाथा ।
तनु अनुहरत सुचदन खोरी । स्थामल गौर मनोहर जोरी ।।

^ ^ ^ ^

रुचिर चौतनी सुभग सिर मेचक कुंचित केस ।
नखसिख सुंदर बंधु दोउ सोभासकल सुदेश ।।

---- मानस

मिथिला की पुष्टवाटिका से जब राम-लक्ष्मण निकले उस समय राम के रूप को सीता और उनकी सखियों ने अनंत से भी अधिक आकर्षण युक्त देखा था । परन्तु एकाएक निकलने पर सिर से कटि तक ही दृष्टि जा सकी होगी । वह रूप इस प्रकार है --

सोभा सींव सुभग दोउ बीरा । नील पीत जल जाम सरीरा ।।
मोर पंख सिर सोहत नीके । गुच्छे विच बिच कुसुम कली के ।।
भाल तिलक श्रम बिन्दु सुहाये । श्रवन सुभग भूषन छवि छाए ।।
विकट भृकुटि कच घूघरवारे । नव सरोज लोचन रतनारे ।।

----मानस

इस नखशिख के विषय में डा० बल्देव प्रसाद मिश्र ने लिखा है -- "उनका शरीर त्रयताप मोचन था। वह श्रद्धा और भक्ति का प्रसंग था । यहाँ

१- डा० बल्देव प्रसाद मिश्र- मानस माधुरी पृ० ६३ .

प्रेम और श्रृंगार का प्रसंग है, अतएव यहां काम को भी लज्जित कर देने वाले रूप की बात है।[1]

धनुष यज्ञ का 'नखशिख' इस प्रकार है --

सहज मनोहर मूरति दोऊ । कोटि काम उपमा लघु सोऊ ।।
सरद चंद निंदक मुख नीके । नीरज नयन भावते जी के ।।

^ ^ ^

पीत जग्य उपवीत सुहाए । नखशिख मंजु महाछबि छाए ।।

----- मानस

अन्य चार 'नखशिख' पूर्ण माने जा सकते हैं जिनमें नख से शिख अथवा शिख से नख तक का क्रमानुसार विवेचन हुआ है । विवाह के समय दूल्हा रूप में राम का नखशिख बड़ा ही सुंदर और मनोहारी है --

श्याम सरीरु सुभाय सुहावन । सोभा कोटि मनोज लजावन ।।
जावक जुत पद कमल सुहाए । मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाए ।।
पीत पुनीत मनोहर धोती । हरित बाल रबि दामिनि जोती ।।
कल किंकिन कटि सूत्र मनोहर । बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर ।।

---- मानस

कौशल्या ने जिस रूप को देखा था उसमें वात्सल्य की प्रधानता है। डा० बल्देव प्रसाद मिश्रने इसके विषय में लिखा है ----- 'कौशल्या जानती हैं कि गोद वाला रूप प्रभु का है, इसीलिए नख से उनकी दृष्टि शिख की ओर जाती है । इस रूप में पद-तल के भी देखने का अवसर मिल जाता है । जहां ध्वज, कुलिश, अंकुश आदि की ऐश्वर्य -सूचक रेखाएं विद्यमान हैं। भक्तों के लिए ये रेखायें साधना-सिद्धि, विघ्न-भञ्जन और मनो-नियन्त्रण अथवा सत्वगुण, तमोगुण और रजोगुण के प्रति इन चरणों की क्या प्रेरणा होगी-- इसी की सूचना देती है ।[2] यह नखशिख इस प्रकार है ---

---

१- डा० बल्देव प्रसाद मिश्र ------ मानस माधुरी ष्ष- पृष्ठ ६४
२- डा० बल्देव प्रसाद मिश्र ------- मानस माधुरी --- पृष्ठ ६७

काम कोटि छबि स्याम सरीरा । नीलकन्ज वारिद गम्भीरा ।।
अरुन चरन पंकज नख जोती । कमल दलन्हि बैठे जनु मोती।।
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे । नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहैं ।।
कटि किंकिनी उदर त्रयरेखा । नाभि गभीर जान जेहि देखा ।।

---- मानस

मनु-शतरूपा ने जिस रूप को देखा था वह प्रेममय था । उनकी दृष्टि सिर से नख तक गई थी । अतः इसे पूर्ण 'शिख-नख' कहा जा सकता है--

नील सरोरुह नील मनि, नील नीर धर स्याम ।
लाजहिं तनु शोभा निरखि कोटि कोटि सतकाम।।
सरदमयंक बदन छबि सीवा । चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा ।।
अधर अरुन रद सुंदर नासा । बिधु कर निकर बिनिंदक हासा।।

^ ^ ^ ^

भृकुटि बिलास जासु लय होई । राम वाम दिसि सीता सोई ।।
छबि समुद हरि रूप बिलोकी । एक टक रहे नयन पर रोकी ।।

----- मानस

भगवान के दो रूप माने जाते हैं-- एक मधुर रूप और दूसरा विराट रूप । मन्दोदरी ने राम के विराट रूप का वर्णन किया है ---

बिस्वरूप रघुवंश मनि करहु तयन बिस्वासु ।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु ।।
पद पाताल सीस अजधामा । अपर लोक अंग अंग बिश्रामा ।।
भृकुटि बिलास भयंकर काला । नयन दिवाकर कच घनमाला ।।

---मानस

'पार्वतीमंगल'[१] एवं 'कवितावली'[२] में भी राम के 'नखशिख' का

१- पार्वती मंगल छंद ५१, ५२, ५३, ६७

२- कवितावली- बालकाण्ड- ३,५,६,७ अरण्यकाण्ड- १३-१७, १६, २४, २५
सुन्दरकाण्ड- ५, लंकाकाण्ड- १७,१६,५०,४४,४६,
उत्तरकाण्ड- १४६, १५२, १५४, १५५, १५८, १५६, १६० ।

बड़ा ही मनोहारी वर्णन हुआ है । नखशिख में सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन में भी उनकी प्रेम और श्रद्धा की भावना निहित है और यही कारण है कि उनका अन्त:करण प्रभु के विश्वरूप का अनुभव कर सका है ।

मानस में सीता के "नखशिख वर्णन" में गोस्वामी जी ने अतिशयोक्ति का प्रयोग किया है :--

जौ छबि सुधा पयोनिधि होई । परमरूपमय कच्छप सोई ।।
सोभा रजु मंदर सिंगारू । मथै पानि-पंकज निजमारू ।।

---- मानस

बरवै रामायण के अनेक नखशिख वर्णनों में गोस्वामी जी ने व्यतिरेक मीलित, उन्मीलित, अतद्गुण, प्रतीक एवं हीन अभेद रूपकों का प्रयोग किया है । विनय-पत्रिका में उपमा,[1] रूपक,[2] व्याजस्तुति[3], अनुप्रास, पुनरुक्ति, श्लेष, प्रतीक, विभावना, व्यतिरेक, उत्प्रेक्षा, उल्लेख, उदाहरण, क्रमालंकार, परिकरांकुर, आदि अनेक अलंकार भावानुकूल प्रयुक्त हुए हैं । तुलसी के स्तोत्र-साहित्य में शान्तरस प्रधान है तथा करुणा[4], हास्य[5], वीर[6], वात्सल्य[7] आदि गौण रूप में व्यवहृत हुए हैं ।

तुलसी के अलंकार रस एवं भाषा के विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है --- "अलंकारों की योजना उन्होंने ऐसे मार्मिक ढंग से की है कि वे सर्वत्र भावों या तथ्यों की व्यंजना को प्रस्फुटित करते हुए पाये जाते हैं । अपनी अलग चमक-दमक दिखाते हुए नहीं । कहीं कहीं लम्बे लम्बे सांग रूपक बाँधने में अवश्य उन्होंने एक भद्दी परम्परा का अनुसरण किया है । दोहावली के

१- विनय-पत्रिका पद १०
२- विनय-पत्रिका पद १४, २२, ४५, ५८
३- विनय-पत्रिका पद ५
४- ~~विनय पत्रिका~~ कवितावली-अयोध्याकाण्ड
५- कवितावली पृ० ३७
६- कवितावली- लंकाकाण्ड
७- मानस- अयोध्याकाण्ड

के कुछ दोहों के अतिरिक्त और सर्वत्र भाषा का प्रयोग उन्होंने भावों और विचारों को स्पष्ट रूप में रखने के लिए किया है, कारीगरी दिखाने के लिए नहीं । उनकी सी भाषा की सफाई और किसी कवि में नहीं ---------- सब रसों की सम्यक् व्यंजना इन्होंने की है , पर मर्यादा का उल्लंघन कहीं नहीं किया है ।[1]

उनके स्तोत्रों में दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया, बरवै, सोहर, छप्पय, तोमर, नाराच, हरिगीतिका, कुण्डलियां आदि छंदों का प्रयोग हुआ है ।

गोस्वामी जी के स्तोत्रों में आलम्बन और आश्रय दोनों के अनुभाव पक्ष का बड़ा सरस और मार्मिक विवेचन हुआ है । यदि उन्होंने भगवान् के सौंदर्य पक्ष की आह्लादकारी झांकी दिखाई है तो स्तुतिकर्ता के हृदय की प्रफुल्लता से परिपूर्ण अंकित किया है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में उसे इस प्रकार उपस्थित किया जा सकता है --------" यदि कहीं सौंदर्य है तो प्रफुल्लता, शक्ति है तो प्रणति, शील है तो हर्ष, पुलक, गुण है तो आदर, पाप है तो घृणा, अत्याचार है तो क्रोध, अलौकिकता है तो विस्मय, पाखंड है तो कुढ़न, शोक है तो करुणा, आनंदोत्सव है तो उल्लास, उपकार है तो कृतज्ञता , महत्व है तो दीनता-- तुलसीदास जी के हृदय में बिंब - प्रतिबिम्ब भाव से विद्यमान है ।[2] बालकाण्ड के निम्नलिखित स्तोत्र में भगवान की अपरिमित शक्ति का जैसा उदात्त चित्रण हुआ है उतना ही मार्मिक देवताओं की प्रणति और विह्वलता का चित्रण है ---

जय जय सुरनायक जनसुखदायक प्रनतपाल भगवंत ।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधु सुता प्रियकंत ।
पालन सुरधरनी अद्भुत करनी मरम न जानै कोई ।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करौ अनुग्रह सोई ।।

मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमतनाथ पदकंज ।।[3]

१- आचार्य रामचंद्र शुक्ल---- हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ० १३४
२- ,, ,, --- गोस्वामी तुलसीदास पृ० ८५
३- बालकाण्ड --- मानस

बालकाण्ड में ही 'भयप्रगट कृपाला'[1] स्तोत्र में भगवान राम के सौंदर्य,शील, अलौकिकता आदि गुणों का प्रभावशाली चित्रण किया गया है। यदि एक ओर अत्यन्त ही दिव्य चित्रण किया गया है तो दूसरी ओर कौशल्या का हृदय प्रफुल्लता से परिपूर्ण, तनमन हर्ष पुलक से आपूरित और उनके अलौकिक रूपको देखकर विस्मय से विस्फारित दिखाया है। (हृदय से प्रफुल्ल, सुन्दर वेषवाले, श्रुतिवंदित) आदि गुणों का अत्यन्त ही मनोहारी चित्रण है। उसी काण्ड में अहिल्या के स्तोत्र[2] में एक ओर यदि भगवान राम का उपकार परायण वरदरूप दिखाया गया है तो दूसरी ओर मुनि पत्नी की कृतज्ञता विह्वल हृदय की दिव्य झाँकी प्रस्तुत कीगई है। बालकाण्ड के वैवाहिक प्रकरण में कई आनंदोत्सव विधायक स्तोत्रात्मक अंशभार हैं जिनका श्रवण अथवा पठन से हृदय उल्लासविभोर हो जाता है --

जावक जुत पद कमल सुहाए। मुनिमन मधुप रहत जिन्ह छाए ।।
पीत पुनीत मनोहर धोती । हरति बालरवि दामिनि जोती ।।
कलकिंकिनि कटि सूत्र मनोहर । बाहु बिसाल विभूषन सुंदर ।।
पीत जनेउ महाछबि देई । कर मुद्रिका चोरिचितु लेई ।।

--- बालकाण्ड

गोस्वामी जी ने स्तोत्र-विधान की कतिपय वृद्ध अथवा लाक्षणिक पद्धतियों की भी अवतारणा की है। अयोध्याकाण्ड में जब भगवान राम वाल्मीकि के आश्रम में पहुंचते हैं तो उनसे अपने रहने के स्थान के विषय में जिज्ञासा करते हैं। भगवान के इस प्रश्न के उत्तर में वाल्मीकि जो कुछ कहते हैं उसमें यदि एक ओर उनके सर्वव्यापी, सर्वान्तरयामी रूपका चित्रण है तो

१- भए प्रगट कृपाला परमदयाला कौसल्या हितकारी ।
हरषित महतारी मुनिमन हारी अद्भुत रूप बिचारी ।
लोचन अभिरामं तनुघन स्यामं निज आयुध भुजचारी ।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभा सिंधु खरारी ।।क्रमशः ।।
--बालकाण्ड ।

२- बालकाण्ड

तो दूसरी ओर ज्ञान-भक्ति और कर्म की आदर्श स्थिति का परिपूर्ण निरूपण है ---

> अगुपेखन तुम्ह देख निहारे । विधि हरि संभु नचावन हारे ।।
> ते उन जानहिं मरमु तुम्हारा । औरु तुम्हहि को जानन हारा ।।
> सोइ जानइ जेहि देहु जनाई । जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ।।
> तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनन्दन । जानहिं भगत भगत उर चंदन ।।
>
> --- अयोध्याकाण्ड ।

इसमें राम की महिमा का वर्णन , भक्त का आदर्श रूप, ज्ञान और कर्म का भव्य आदर्शरूप, भक्तवत्सलता आदि गुणों का विवेचन किया गया है ।

गोस्वामी जी के स्तोत्रों में आरण्यकाण्ड में आए हुए सुतीक्ष्णकृत स्तोत्र का स्थान अन्यतम है । चौपाई जैसा छंद इन महाकवि की लेखनी का स्पर्श प्राप्तकर किस प्रकार संगीत की अपरिमित मधुरिमा, भाव की गरिमा, भाषा के औदात्य आदि गुणों से सहज सम्पन्न होकर काव्य का श्रृंगार बन गया है । इसमें यह देखा जा सकता है । भक्त-हृदय के भाव की अभिव्यक्ति के साथ साथ इस स्तोत्र में शब्द और अर्थगत अलंकारों का जैसा स्वाभाविक समावेश हुआ है वह सभी दृष्टियों से अनुपम है । इसीकाण्ड में अत्रि और जटायु के स्तोत्रों की शब्दगत चारुता, छन्दगत मोहकता, काव्यकला के श्रृंगार माने जा सकते हैं ।

लंकाकाण्ड के स्तोत्रों में रावण की विजय के बाद गोस्वामी जी ने अनेक स्तोत्र लिखे हैं । इन स्तोत्रकर्ताओं में इन्द्र, देवता, रम्भा, शंकर आदि हैं । इन स्तोत्रों में प्रत्येक स्तोत्रकर्ता का व्यक्तिगत शीलभाव एवं वैशिष्ट्य स्पष्ट लक्षित होता है । देवता बातें तो परमार्थ की करते हैं परन्तु उनका अन्त:करण स्वार्थ में डूबा रहता है । सम्भवत: गोस्वामी जी यह बताना चाहते हैं कि उनकी कृतज्ञता कदाचित क्षणिक और अस्थाई है --

आए देव सदा स्वार्थी । बचन कहहिं तेंतु परमार्थी ।
---- लंकाकाण्ड ।

उत्तरकाण्ड के स्तोत्रों केप्रमुख विषयों का निर्देशन पहले किया जा चुका है । उन स्तोत्रों में परमसत्य का परम रसमय निरूपण हुआ है । सत्य, शिव और सुंदर का समन्वित रूप उत्तरकाण्ड में शिव, वेद एवं कागभुशुण्डि कृत स्तोत्रों में मिलता है ।

गोस्वामी जी की स्तोत्र-विधान-कला का एक रूप वह भी है जिसे आचार्य रामचंद शुक्ल ने 'मंगलाशा' के नाम से अभिहित किया है :-

'प्रभु के बचन वेद-बुध-सम्मत मम मूरति महिदेव मई है ।
तिन्हकी मति, रिसराग, मोह, मद, लोभ लालची लीलि लई है।।
राज-समाज-कुसाज, कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है
नीति प्रतीति प्रीति- परिमिति पति हेतुवाद हठिहेरि हई है ।।

^ ^ ^ ^

सीदत साधु, साधुता सोचति, खल विलसत, हुलसति खलई है ।'
---- विनय पत्रिका ।

'लोक के मंगल की आशा से उनका हृदय परिपूर्ण और प्रफुल्ल था । इस आशा का आधार थी वह मंगलमयी ज्योति जो धर्म के रूप में जगत की प्रतिभासिक सत्ता के भीतर आनंद का आभास देती है और उसकी रक्षा द्वारा सत् का -- अपने नित्यत्वका --- बोध कराती है । लोक की रक्षा ' सत् ' का आभास है लोक का मंगल ' परमानन्द ' का आभास है । इस व्यवहारिक सत् और आनंद का प्रतीक है 'रामराज्य '।जिसमें उस मर्यादा का पूर्ण प्रतिष्ठा है जिसके उल्लंघन से इस सत और आनंद का आभास भी अव्यवधान में पड़ जाता है । पर यह व्यवधान सब दिन नहीं रह सकता । अन्त में सत् अपना प्रकाश करता है । इस बात का पूर्ण विश्वास तुलसीदास जी ने प्रकट किया है ।'[1] उपर्युक्त में लोक की वर्तमान दशा के रूप में उन्होंने

१- आचार्य रामचंद्र शुक्ल ------ गोस्वामी तुलसीदास पृ० ३७

अत्यन्त भय और आकुलता के साथ वर्णन किया है ।

गोस्वामी जी की काव्य-कला के सभी प्रकृष्ट गुण उनके स्तोत्रों में कहीं बीज रूप में कहीं पूर्ण विकसित रूप में विद्यमान हैं । वस्तुत: गोस्वामी जी की एक-एक पंक्ति स्तोत्रात्मक है । विद्वानों और संतों के समाज में गोस्वामी जी की लिखी प्रत्येक पंक्ति को मंत्र माना जाता है। जिसके मनन करने से जीव का त्राण होता है उसे मंत्र कहते हैं । गोस्वामी जी के समस्त स्तोत्र ही मंत्र हैं और उनका मानस महास्तोत्र कहा जा सकता है । जीव मात्र के इहलोक और परलोक के कल्याण का मार्ग उनके द्वारा प्रस्तुत हुआ है ।

राम भक्ति-काव्य में भगवान के शील, शक्ति और सौंदर्य तीनों विभूतियों को ग्रहण करने के कारण भावों का विपुल वैविध्य मिलता है किन्तु कृष्ण भक्ति की विभिन्न शाखाओं में उनकी सौंदर्य विभूति विशेष रूप से अभिनंदित और वंदित हुई है । इसलिए इन कृष्ण भक्तों के रचे हुए स्तोत्रों में सौंदर्य-वर्णन की प्रधानता है । इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दी में इन भक्त कवियों के द्वारा लिखे गए स्तोत्रों में कोमल और सुकुमार भावों की अभिव्यंजना हुई और स्तो-रचना-कला के बड़े सुकुमार एवं मनोरम स्वरूप का विकास हुआ है ।

कृष्ण भक्त कवियों में उपासना के तीन प्रमुख भाव मिलते हैं ।-- सख्य , वात्सल्य और मधुर । सख्य में दास्य और शान्त का स्वत: अन्तर्भाव हो जाता है । इसी प्रकार वात्सल्य में सख्य, दास्य और शान्त का तथा मधुर में इन सबका अन्तर्भाव हो जाता है । इन रचनाओं के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि विभिन्न भावों की उपासना करने वाले कवियों की वाणी में तद्गत भावों की अभिव्यंजना तो है ही अन्य अन्तर्भाव भी उनके द्वारा मार्मिकता के साथ चित्रित हुए हैं। अत: उपासनागत उपर्युक्त वैविध्य होने के कारण कृष्ण भक्त कवियों की प्राय: सभी रचनाएं स्तोत्रात्मक कही जा सकती हैं ।

कहने का एक प्रधान कारण और भी है । कृष्णोपासक कवियों की उक्त रचनाओं के अधिकांशत: स्तोत्रात्मक भी हैं । इन भक्तों की रचनाओं

में रूप वर्णन एवं लीला वर्णन भी उसी भाव से किया गया है जिस भाव से इतर कविस्तोत्र रचना करते हैं । कारण, इन भक्तों की उपासना के चार प्रमुख अधिष्ठान हैं ---- नाम, रूप, लीला और धाम । अतएव भक्ति-काव्य में नाम, रूप, लीला, धाम का वर्णन स्तोत्रात्मक माना जाना चाहिए । इसलिए सूरदास आदि भक्तों के लीला वर्णन को प्रस्तुत लेखक ने स्तोत्रात्मक माना है । सूर के विषय में विशेष रूप से ध्यान रखने योग्य बात यह है कि वे वल्लभाचार्य की आज्ञा से श्रीनाथ जी की सेवा में नियुक्त थे अर्थात् वे दिन-रात भगवान् की लीलाओं का गान करते थे । यह लीलागान उनके जीवन की सर्वोच्च साधना थी और इसी के माध्यम से वे भगवान् के प्रति आत्म-निवेदन करते थे । इसलिए इसको स्तोत्रात्मक मानने में किसी प्रकार की अत्युक्ति नहीं है।

इन भक्त कवियों के भाव-पक्ष और कला पक्ष का विस्तृत विवेचन अधिकारी विद्वानों के द्वारा किया जा चुका है । इस प्रसंग में उन्हीं पक्षों का लाना अभीष्ट है जो स्तोत्रात्मकता के कारण ऐसी विशेषताओं से युक्त हो गए हैं । भक्त कवियों में नखशिख-वर्णन की कला का विशेषरूप से पूर्ण विकास हुआ है । यह नखशिख- वर्णन एक ओर यदि कृष्ण का है तो दूसरी ओर राधा देवी का । कृष्ण के भी बाल, कैशोर, युवक आदि विभिन्न रूप मुद्राएं और अवस्थाएं नखशिख-वर्णन के द्वारा विवृत हुए हैं । यहां सूरदास का एक पद प्रस्तुत किया जा रहा है --

देख सखी बनते व्रज आवत सुंदर नंद कुमार कन्हाई ।
मोर पंख सिर मुकुट बिराजत मुख मुरली धुनि सुभग सुहाई
कुंडल लोल कपोलनि की छबि, मधुरी बोलनि बरनि न जाई ।
लोचन ललित ललाट भृकुटि बिच तकि मृगमद की रेख बनाई
मनु मरजाद उलंघि अधिक बल उमगि चली अति सुन्दरताई ।।
कुंचित केस सुदेस कमल पर मनु मधुपनि-माला पहराई ,
मंद मंद मुसकानि मनों धन दामिनि दुन्दुर देत दिखाई ।

सोभित सूर निकट नासा के अनुपम अधरनि की अरुनाई ।
मनु सुक सुरंग विलोकि बिंब-फल चाखन कारन चोंच चलाई ।।

उपर्युक्त पद का नखशिख वर्णन काव्य कला की दृष्टि से उच्चकोटि का है । यदि सूर के बाल वर्णन की तुलना रवीन्द्र के बाल काव्य से की जाय तो वह उससे अधिक श्रेष्ठ है । जैसी काव्य कुशलता, सशक्त चित्रण, दृढ़ता एवं भावव्यंजना सूर के नखशिख-वर्णन में है वह रवीन्द्र में नहीं पाई जाती । ओज और शब्दों का भावानुकूल प्रयोग सूर की रचना की विशेषता है । सूर एवं रवीन्द्र की तुलना करते हुए डा० देवराज ने लिखा है --------- --"हमारी मान्यता के अनुसार महाकवि अथवा प्रथमश्रेणी का कलाकार कहलाने का अधिकारी वही हो सकता है जिसकी यथार्थ-विषयक दृष्टि अपार-अपरिमित जान पड़ती है । जिसकी वाणी में जीवनानुभूति का समुद्र लहराता प्रतीत होता है"।[१] सूर की पंक्तियां हमारा ध्यान सीधे सौंदर्य के मुख केन्द्र तक ले जाती हैं, इसके विपरीत रवीन्द्र की कविता में हमें इधर उधर घुमाने के बाद फिर केन्द्र पर वापिस लाती हैं ।[२]

अन्य भक्त कवियों का रूप-वर्णन भी बड़ा कलात्मक है --

मो मन गिरिधर छबि पै अटक्यो ।
ललित त्रिभंग चाल पै चलिकै, चिबुक चारु जड़ि ठटक्यो ।
सजल स्यामघन- बरन लीन है, फिरि चित अनंत न भटक्यो ।।
कृष्णदास किए प्रान निछावर, यह तन जग-सिर पटक्यो ।।

----- कृष्णदास ।

प्रात समय उठि जसुमति जननी गिरिधर सुत को उबटि न्हावति ।
करि सिंगार बसन भूषन सजि फूलन रचि रचि पाग बनावति।।
छूटे बंद बागे अति सोभित बिचबिच चोव अरगजा लावति ।
सुथनलाल कूदना सोभित आजु की छबि कछुकहति न आवति ।।
विविध कुसुम की माला उरधरि श्रीकर मुरली बेंत गहावति ।
लै दरपन देखे श्री मुखको गोविंद प्रभु चरननि सिर नावति ।।
------ गोविंद स्वामी ।

१. डॉ० देवराज — साहित्यचिन्ता २०२१-२५
२. वही — २०२२

उपर्युक्त पदों में बड़ी ही भावानुकूल और परिमार्जित भाषा में कृष्ण का नखशिख-वर्णन किया गया है ।

कृष्ण भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण के अतिरिक्त राधा देवी का नखशिख-वर्णन बड़ी कुशलता एवं कलात्मक रीति से किया है । इन नखशिख वर्णनों में संयोग पक्ष तथा वियोग पक्ष दोनों रूपों की सरस रचनाएं उपलब्ध होती हैं । निम्नलिखित उदाहरण इसका प्रमाण है ---

ब्रज नव तरुणि कदम्ब मुकुट मणि श्यामा आजु बनी ।
नखशिख लौं अंग-अंग माधुरी मोरे श्याम धनी ।।१।।
यों राजत कबरी गूंथित कच, कनक कंज बदनी ।
चिकुर चंदकनि बीच अर्ध-विधु मानों ग्रसित फनी ।।२।।

^ ^ ^ ^

पद अम्बुज जावक जुत भूषण प्रीतमउर अवनी ।
नव नव भाय विलोकि भाग इम विहरत वर करनी ।।८।।

---- हित हरिवंश ।

इसमें कवि ने राधा जी के अंग का सूक्ष्मता से चित्रण किया है । श्री राधा की गंभीर नाभि श्री मोहन के मनरूपी मीन के खेलने के लिए सरोवर का कार्य करती है । इनकी क्षीण कटि के नीचे विविध किंकिणियों से विभूषित इनके बड़े बड़े नितम्ब तथा कदली स्वरूप जंघ हैं और इनके महावर से रंगे हुए चरण-कमल इनके प्रियतम के वक्षस्थल पर सुशोभित होने जा रहे हैं ।

कुछ कवियों ने श्री कृष्ण का नखशिख-वर्णन करते हुए उसी रूप में दर्शन की कामना भी की है । सूरदास मदन मोहन का कृष्ण का नखशिख वर्णन इसी प्रकार का है ---

---

~~१- डा० देवराज - साहित्यचिंतन पृ० ८२~~

मधु के मतवारे स्याम, खोलौ प्यारे पलकैं ।
सीस मुकुट लटा छुटी और छुटी अलकैं ।।
सुरनर मुनि द्वार ठाढे दरस हेतु क्रर्व कलकैं ।
नासिका के मोती सो है, बीच लाल ललकैं ।।
कटि पीताम्बर मुरलीकर श्रवन कुंडल झलकैं ।
सूरदास मदन मोहन दरसदै हो चलकैं ।।

------सूरदास- मदनमोहन ।

ध्रुवदास जी के अनेक पदों के द्वारा राधा का नखशिख-वर्णन किया गया है । इन पदों में उनकी भक्ति-भावना का यथार्थ प्रदर्शन किया गया है :-----

रूप जल उठत तरंग है कटाछनके, अंग अंग भौरनकी अति गहराई है ।
नैननकी प्रतिबिंबे पर्यौ है कपोलनि में तेई भये मीनतहां ऐसी
उर आई है ।
अरुन कमल मुसुकान मानौ फबि रही, थिरकन बेसरि के
मोती की सुहाई है ।
भयौ है मुदित सखीलालकौ मराल मन जीवन जुगल ध्रुव
एक ठाव पाई है ।।[1]

----ध्रुव दास ।

राधा के नेत्रों का प्रतिबिम्ब कपोलों पर मीन की उत्पत्ति करता है, अरुण कमल मुस्कान के साथ-साथ बेसरि को और भी सुंदरता प्रदान करते हैं । यह राधा जी का 'शिखनख' वर्णन है जिसे फारसी की परम्परा का माना जाता है । परन्तु स्तोत्रों के प्रभाव-स्वरूप उसकी लौकिकता अलौकिकता में परिवर्तित हो गई और देवी देवताओं का भी शिखनख वर्णन होने लगा ।

कृष्ण भक्त कवियों ने ब्रज, मथुरा आदि धामों का भी रूप-चित्रण किया है परन्तु उनमें इनकी दृष्टि परिमित ही रही है । नंददास जी ने

१- श्रृंगार शतक ।

ब्रज की महिमा में चिर वसंत की उपस्थिति को ही महत्वपूर्ण मान लिया है । इनकी रचना बड़ी ही सरस और मधुर है तथा अनुप्रासादि से युक्त साहित्यिक भाषा में लिखी गई है --

श्री वृंदावन चिदघन, कछु छबि बरनि न जाई ,
कृष्ण ललित लीला के काजगहि रहयी जड़ताई।
जहं नग, खग, मृग, लता, कुंज, वीरुध तृन जेते,
नहिन काल-गुन, प्रभा सदा सोभित रहैं तेते ।
सकल जंतु अविरुद्ध जहां, हरि मृग संग चरहीं ,
काम क्रोध मद-लोभ-रहित लीला अनुसरहीं ।
सब दिन रहत वसंत कृष्ण- अवलोकनि लोभा,
त्रिभुवन कानन जा विभूति करि सोभित सोभा ।
या वन की बर बानिक या बनही बनि आवै ,
सेस, महेस, सुरेस, गनेस न पारहि पावैं ।।

उपर्युक्त पद में प्रकृति-वर्णन के साथ-साथ वृन्दावन के आध्यात्मिक पक्ष का भी स्पष्टीकरण किया गया है जिसके कारण शेष, महेष, सुरेशादि देवता भी उसकी महिमा का गान करते हैं । वृन्दावन में ही भगवान् श्रीकृष्ण राधादेवी और अन्य गोपिकाओं के साथ `रास` करते हैं जिससे वहां चिन्मय बसन्त विद्यमान रहता है और निकुंज रस की प्राप्ति होती है । इसीलिए गदाधर भट्ट आदि कवियों ने भी वृन्दावन की महिमा का गान करते हुए उसे योगपीठ बतलाया है जहां स्वयं परम तत्त्वज्ञ श्री कृष्ण निवास करते हैं । वे लोग भाग्यशाली हैं जिनके अन्त:करण में इसके प्रति प्रेम उत्पन्न होता है ।

कालिन्दी जहं नदी नील निर्मल जल भ्राजै ।
परमतत्व वेदान्त वेधस्व रूप विराजै ।।
ता मंडप मह योग पीठ पंकज छवि लागी ।
ताके मन में उदित होत जो कोऊ बड़भागी।।
श्री वृन्दावन योगपीठ गोविन्द निवासा ।।

---देव गदाधर भट्ट की वाणी पृ० ११६१

भक्ति से ओतप्रोत रसखान ने भी `उदात्त अलंकार` में कृष्ण का वंदन किया है :-

ब्रह्म मैं ढूढ्यो पुरानन-गैदंन, छंद सुने चित चौगुने चायंन ।
देख्यौ-सुन्यौ न कबौं कितहूं वौं कैसो सरुप औ कैसे सुभायन ।
हेरत- हेरत हारि गयी रसखान बतायौ न लोग लुगायन ।
देख्यौ अहा , वौ कुंज कुटीर में बैठ्यौ पलोटत राधिका पायंन ।।

कृष्ण भक्त कवियों के अधिकांश स्तोत्र चौपाई, चौपाइ, रोला, चंद्र, कुंडल, राधिका, हीर, तोमर, रूपमाला, गीतिका, विष्णुपद, सरसी, लावनी, हरिप्रिया, मनहरण आदि छंदों में लिखे गए हैं जिनमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष, अतिशयोक्ति, प्रतीप, उदाहरण, उल्लेख आदि अलंकारों का भावानुकूल प्रयोग हुआ है ।

कृष्ण भक्त कवियों की स्तोत्रात्मक रचनाओंके भाव पक्ष एवं कला पक्ष दोनों से सम्बन्धित पूर्ववर्ती संक्षिप्त विवेचन से प्रकट है कि स्तोत्र-साहित्य के विषय-वैविध्य एवं रचना-विधान में इन रचनाओं का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है । उनके द्वारा विषय-वस्तु को जो व्यापकता मिली वह अपूर्व कही जा सकती है । इतर काव्यधाराओं की तुलना में इन स्तोत्रात्मक रचनाओं की प्रधान विशेषता उनके अधिकांश गेय होने की है । यही कारण है कि शताब्दियों से इन्हें लोक-कण्ठ में सदैव स्थान प्राप्त होता रहा है । जहां नाम,रूप, लीला और धाम को इन रचनाओं में प्रमुखता मिलने के कारण दृष्टि का विस्तार दिखायी पड़ता है वहां नख-शिख वर्णन के विविध रूपों और शैलियों के कारण कला को भी व्यापकता मिली है । मधुर-भावों की अभिव्यक्ति के साथ साथ उनकी भाषा का माधुर्य भी इन रचनाओं में अनुपेक्षणीय है । कहना न होगा कि ब्रजभाषा की लोक प्रसिद्ध मधुरता को चरितार्थ करने में इन कवियों को बहुत बड़ा श्रेय प्राप्त है । इन रचनाओं के नखशिख वर्णन के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि उसकी परंपरा रीतिकालीन काव्य से चली आई है यद्यपि समकालीन प्रवृत्तियों के कारण उसकी मूल भावना में पर्याप्त अन्तर भी है जोकि परवर्ती विवेचन से स्पष्ट है।

रीतिकाव्य की परम्परा भक्तिकाव्य से आई थी और प्राय: सभी प्रवृत्तियों का आरम्भ इसी अवधि में हो चुका था । केशव दास का आविर्भाव इसी काल में हुआ जिनकी कृतियों में रीतिकाल की भूमिका पूरी तरह तैयार हो गई थी । इस काव्य की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसमें नखशिख के साथ साथ शिखनख वर्णन की प्रवृत्ति भी बढ़ी । इस प्रवृत्ति का प्रारम्भ सम्भवत: महाकवि केशवदास के द्वारा ही हुआ था। उन्होंने इन दोनों पद्धतियों का अन्तर इस प्रकार स्पष्ट किया है ---

नख से सिख लौं वरनिये देवी दीपति देखि ।
सिख तें नख लौं मानुषी केसवदास विसेषि ।।[२]

पहले बताया जा चुका है कि भक्त कवियों ने स्तोत्रात्मक रचनाओं में इन दोनों पद्धतियों को प्रसंग और भाव-व्यंजना की उपयुक्तता को ध्यान में रखते हुए स्थान दिया है । अतएव उपर्युक्त उल्लेख से यह ज्ञात पड़ता है कि रीतिकाल में आकर कवि एवं आचार्यों ने भक्ति की धारा के मन्द हो जाने पर दोनोंपद्धतियों को पृथक पृथक कर दिया । भक्त कवियों ने दोनों का वर्णन एक साथ इसलिए किया है क्योंकि उनके द्वारा अदिव्य व्यक्तियों की स्तुति का प्रश्न ही नहीं उठता । अत: वे स्वतंत्र रूप में प्रसंगानुसार अपने इष्टदेवों का दोनों रूपों में वर्णन करते आ रहे थे । किन्तु जैसा कि उपर्युक्त निर्देश से प्रकट है कि दिव्य और दिव्यादिव्य का वर्णन नख से आरम्भ होकर शिख तक जाता है और उसमेंश्रद्धाकी भावना निहित रहती है । शिखनख में शिख से आरम्भ होकर नख तक जाता है और उसमें प्रेम-तत्व विद्यमान रहता है । नखशिख-वर्णन का केवल दिव्य और दिव्यादिव्य तक ही सीमित हो जाने के अतिरिक्त दोनों पद्धतियों में दूसरा स्पष्ट अन्तर यह है कि शिखनख में त्रिवली, नाभि, उदर, कुचान्त, कुचाग्र, भुज, मूल, मुख, तारे, पाटी, मांग तथा नख आदि अंगोपांगों एवं अलंकरणों का बंधन अधिक है ।[३] दोनों

१- द्रष्टव्य--- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र-- हिन्दी साहित्य का अतीत भाग २ पृष्ठ ३६७

२- द्रष्टव्य - आचार्य केशवदास- कविप्रिया

३- द्रष्टव्य - आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र-हिन्दी साहित्य का अतीत-पृ०३६८ भाग २

पद्धतियों में तीसरा अन्तर यह है कि शास्त्रीय ग्रन्थों के अनुसार नखशिख में मंडन शिक्षा कर्म आदि सखियों के माध्यम से किया गया है किन्तु शिखनख में प्राय: इस प्रकार की योजना नहीं की गई है ।[1] यह स्मरणीय है कि रीतिकाल की अनेक रचनाएं जिनमें राधा अथवा कृष्ण के नखशिख-वर्णन आते हैं वे केवल राधिका-कन्हाई सुमिरन को बहानो मात्र ही हैं । अत: प्रस्तुत विवेचन में हम केवल उन्हीं नखशिख वर्णनों पर विचार करेंगे जिनके मूल में भक्ति की प्रेरणा एवं तत्व विद्यमान हैं ।

रीतिकाल की विभिन्न काव्य-पद्धतियों का विवेचन पांचवे अध्याय में किया जा चुका है । यहां उसकी कलापक्ष की विशेषताओं पर ही विचार करना अपेक्षित है जिसमें नखशिख-वर्णन प्रधान है । रीतिकाल में राधा-कृष्ण के अतिरिक्त सीता-राम, शिव-पार्वती, हनुमान, लक्ष्मण, देवी, चंडी आदि का भी नखशिख वर्णन हुआ है । कुछ ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने अपने इष्टदेव के एक ही अंग को लेकर नखशिख - वर्णन करके उसके सौंदर्य और प्रभाव का विशद वर्णन किया है । इस प्रकार के उदाहरण चरण-चंद्रिका आदि ग्रंथ हैं ।

१- <u>चिंतामणि त्रिपाठी -</u>

रीतिकाल के प्रमुख प्रवर्तक थे। उनकी स्तोत्रात्मक रचनाओं का विवेचन पहले किया जा चुका है । उनके काव्य से इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि उनमें भक्ति की भावना विद्यमान है । उन्होंने राधा देवी के रूप-वर्णन में सूरदास जी के प्रसिद्ध पद `अद्भुत एक अनूपम बाग` की रूपकातिशयोक्ति वाली कलात्मक शैली ग्रहण की है । इनकी ललित और सानुप्रास भाषा के योग से यह रूपकातिशयोक्ति बड़ी मनोहारी बन गई है --

---

१- द्रष्टव्य --- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र --
हिन्दी साहित्य का अतीत,
पृष्ठ ३६६ ।

इक आजु मैं कुंदन बेलि लखी मनि मंदिर की रुचि वृंदि भरै ।
करविंद कै पल्लव इन्दु तहां अरविन्दन ते मकरन्द झरैं ।।
उत कुंदन के मुकुतागन ह्वै फल सुंदर द्वै पर आनि परैं ।
लखियौं दुति मंद अनंद कला नवनंद सिलाद्रव रूप धरैं ।।

---चिंतामणि त्रिपाठी ।

२- मतिराम :-

मतिराम ने कृष्ण के वक्षस्थल पर पड़ी हुई मोती की माला का वर्णन किया है ---

मुकुतहार हरि के हिय मरकत - मनिमय होत,
पुनि पावत रुचि राधिका- मुख- मुसकानि - उदोत ।।

-- मतिराम ।

इसमें कवि ने तद्गुण और पूर्व रूप अलंकार का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है । कृष्ण के गले में पड़ी हुई उज्जवल मोतियों की माला उनके श्यामल शरीर की आभा से मरकतमणि के समान प्रतीत होती है । परंतु साथ साथ राधादेवी की बारम्बार मुसकान के प्रभाव से पुन: अपने रूप में आ जाती है । इसी प्रकार एक और उदाहरण है जिसमें श्री कृष्ण का रूप वर्णन कर कवि उनके नेत्रों की सुन्दरता की अधिक प्रशंसा करता है । अंतिम पंक्तियों में 'अँखियान लुनाई' का प्रयोग साहित्यिक एवं कलात्मक चमत्कार से परिपूर्ण है --

मोर पखा 'मतिराम' किरीट में कंठ बनी बनमाल सोहाई,
मोहनकी मुसकानि मनोहरि, कुंडल डोलन में छवि छाई ।
लोचन लोल बिसाल बिलोकनि को न बिलोकि भयो बस माई
वा मुख की मधुराई कहा कहौं मीठि लगै अँखियान लुनाई ।।

उनके नेत्रों की बंक दृष्टि इतनी मनोहारी है कि वह देखते ही बनती है। इस सवैया में भगवान् कृष्ण के मुख-सौंदर्य का वर्णन ऐसे कौशल से किया गया है कि मुख सौंदर्य का वर्णन ऐसे विदग्ध संकेतों द्वारा किया गया है कि वह

और ग्रीवा से शिखा तक का सौंदर्य वर्णन अलग अलग किए बिना ही सब अंगों की गत्वैर शोभा का परिपूर्ण चित्र सामने आ जाता है । मस्तक पर शोभा पाने वाला किरीट ललाट और केशों की छवि को उद्भासित करने में समर्थ है । कंठ में शोभा पाने वाली बनमाला उनके प्रशस्त पीन व वक्षस्थल की शोभा को रेखांकित कर रही है । कुंडलों की कान्ति में प्रतिफलित होने वाली स्मिति मुख और श्रवण सब के सौंदर्य पर प्रकाश डालती है । नैत्रों की चंचलता और विशालता का वशीकरण विश्वव्यापी है जिसमें माधुर्य और लावण्य दोनों का मणिकांचन योग है । मतिराम ने इस संबन्ध में उत्तम से उत्तम शब्दों को क्रम से रखने का प्रयत्न किया है । इसी कोटि का उनका दूसरा भी प्रसिद्ध छंद है --

गुच्छनि को अवतंसलसै सिखि पच्छन अच्छ किरीट बनायो,
पल्लव लाल समेत छरीकर पल्लव सो `मतिराम` सुहायो ।
गुंजनि के उर मंजुल हारनि कुंजनि ते कढ़ि बाहेर आयो ,
आजको रूप लखे ब्रजराज को आंखिन को फल आजु ही पायो।

इसी प्रकार राधादेवी रूप-वंदना के एक पद में मतिराम ने छलापह्नुति का सुंदर प्रयोग किया है । राधादेवी का अंग अंग इतना सुंदर है कि चन्द्रमा भी उसके आगे अपने को हीन समझता है । अत: उसने उनके सौंदर्य को चुराने के लिए अपनी किरणों के द्वारा प्रयत्न किया । इस अपराध के लिए ब्रह्मा जी के द्वारा उसे दंडित किया गया । यही कारण है कि वह अपने मुख में कलंक रूपी कालिमा लगाकर देवलोक के आसपास रात-दिन चक्कर लगाया करता है --

सुंदर वदन राधे, सोभा को सदन तेरो,
वदन बनायो चार-वदन बनाय कै ,
ताकी रुचि लेन को उदित भयो रैनपति,
मूढ़-मति राख्यो निज कर वगराय कै ।
मतिराम कहै निसिचर चोर जानि याहि
दीनी है सजाय कमलासन रिसायकै ।

रातों-दिन फेरै अमरालय के आस पास,

मुल में कलंक- मिस कारिख लगायके ।

3- बिहारी :-

बिहारी की भाषा की समास शक्ति और कल्पना की समाहार शक्ति प्रसिद्ध है । उन्होंने भगवान् कृष्ण की नृत्य मुद्रा का बड़ा मनोरम चित्र अंकित किया है जो सूरदास जी के द्वारा अंकित इस प्रकार के चित्रों का स्मरण दिलाता है :-

भृकुटी मटकनि पीतपट चटक लटकती चाल ।
चल चख चितवनि चोरि चित लियो बिहारी[1] लाल ।।

बन्धु भये कादीन के को तारयो रघुराय ।
तूठे तूठे फिरत हो झूठे बिरद बुलाय ।।[2]

कौन भांति रहिहै बिरद अब देखिवी मुरारि ।
बीधे मोसों आनिके गीधे गीधहि तारि ।।[3]

मोहिं तुम्हैं बाढ़ी बहस को जीते जदुराज ।
अपने अपने बिरद की दुहु निबाहन लाज ।।[4]

----- बिहारी ।

काव्यलिंग अलंकार का एक उदाहरण भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है --

तजि तीरथ हरि राधिका तन दुति करि अनुराग ।
जेहि ब्रजकेलि निकुंज मग पग पग हो प्रयाग ।।

----- बिहारी ।

1- तुलनीय- नृत्यत श्याम स्यामा हेत ।
मुकुट लटकनि भृकुटि मटकनि
नारि मन सुख देनि ।

2- तुलनीय- तुम कब मोसो पतित उधारियो ।
मोहि को प्रभु बिरद बुलावत
बिन मार मराकल को तारयो ।

3- हरि हौं सब पतितन को राव
को करि सकै बराबरि मेरी
सोधों मोहिं बताव ।

4- आजु हौं एक एक कर टरिहौं ।
के हमहीं के तुमही माधव
अपुन भरोसे लरिहौं ।

भाषा की समास शक्ति और कल्पना की समाहार शक्ति दोनों का पूर्ण स्पष्टीकरण इन दोहों में भी हुआ है । सूर ने जिस तथ्य को व्यास रूप में स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है वही तथ्य बिहारी ने समास रूप में अपनी कला चातुरी से दोहे में ही उपस्थित कर दिया है ।

४- लौकिक कवियों की इन रचनाओं के स्तोत्र होने में संदेह किया जा सकता है और इनमें बहुतों को नायक-नायिका भेद के अन्तर्गत भी ~~[illegible]~~ स्वीकार किया जा सकता है । परन्तु ऐसा करके इन की स्तोत्रात्मकता का निषेध उचित नहीं माना जा सकता । कारण स्तोत्र रचना लौकिक कवि भी करते रहे हैं । क्योंकि लौकिक कवियों के अपने इष्ट देव होते हैं । देवताओं के प्रति उनमें भक्ति होती है और वे स्तोत्र रचना भी बराबर करते रहे हैं । अतएव रीतिकालीन कवियों की राम-कृष्ण परक काव्य-रचनाओं को स्तोत्र न मानने का कोई कारण नहीं होता । इन रचनाओं पर संस्कृत साहित्य एवं भक्ति कालीन साहित्य की स्तोत्र- परम्परा का गहरा प्रभाव पड़ा है । रीतिकाल में कतिपय ऐसे कवि भी मिलते हैं जिनकी स्तोत्रात्मक रचनाओं में भक्ति की भावना रहस्यवाद की सीमाओं को पार करती हुई प्रतीत होती है । देव के निम्नलिखित छंद इसका सुंदर उदाहरण प्रस्तुत ~~पूर्णरूपेण~~ करते हैं :-

देव नभ-मंदिर में बैठारयो पुहुमि -पीठ,
सिगरे सलिल अन्हवाय उमहत हौं ।
सकल महीतल के मूल - फल - फूल - दल,
सहित सुगंधन चढ़ावन चहत हौं ।
अगिनि अनंत, धूप - दीपक, अनंत ज्योति ,
जल-थल - अन्न दै प्रसन्नता लहत हौं ।
ढारत समीर चौंर कामना न मेरे और
आठ जाम राम तुम्हें पूजत रहत हौं ।

इस घनाक्षरी में कवि विस्मय पूर्वक अपने राम की उस विराट मूर्ति को देखता है जो तीनों लोकों में विद्यमान है । उसने आकाश को मंदिर

और पृथ्वी को उसकी पीठिका माना है । अगणित सरिताओं और समस्त सिन्धुओं से वह उसे स्नान कराता है, समस्त पृथ्वी के फल- फूल आदि उस पर चढ़ाता है । अगणित अग्नियों से धूप- दीप जलाकर उस पर जल डालता है, समस्त लोकों का अन्न तो नैवेद्य के लिए प्रतिक्षण प्रस्तुत रहता है । इस प्रकार उसका अन्तःकरण रात-दिन उसके पूजन में ही आनन्द का अनुभव करता है । संस्कृत-साहित्य में इस प्रकार के स्तोत्र परापूजा के अंतर्गत माने जाते हैं ।

इसी प्रकार कुछ छंदों में कवि सूची के छिद्र में ही स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल का अनुभव करता है, भूखे भुनगे में उसे चौदहों लोक दिखाई पड़ते हैं, छोटी सी चींटी के अंडे में ही समस्त ब्रह्माण्ड व्याप्त दिखाई पड़ता है, समस्त सागर जल की एक बूंद में ही विद्यमान है और स्थूल तथा सूक्ष्म सब एक ही साथ मिल गए हैं । इतना ही नहीं उसे नख के अग्र भाग में स्वयं सुमेरु की समस्त वैभव राशि अनुभूत हो रही है ---

नाक, भू, पताल, नाक-सूची ते निकसि आए,
चौदहौ भुवन भूखे भुनगा को भयौ हेत,
चींटीं- अंड-मंड में समान्यौ ब्रह्माण्ड सब,
सपत समुद्र वारि बुंद में हिलौरे लेत ।
मिलि गयौ मूल थूल- सूच्छम समूल कुल,
पंच भूत गन अनु-कन में कियौ निकेत,
आप ही ते आप हीं सुमति सिखराई देव ।
नख-सिखराई में सुमेरु दिखराई देत ।।

निम्नलिखित छंद में देव ने भक्तों की विशिष्ट अद्वैत भावना का स्वरूप स्पष्ट किया है --

हौं ही ब्रज वृंदावन मोहीं में बसत सदा,
जमुनातरंग श्याम-रंग अवलीन की ।

चहूं ओर सुंदर सघन वन देखियत
कुंजनि में सुनियत गुंजन अलीनकी ।
वंशीवट- तट नटनागर नटतु मों
में रास के विलास मधुर धुनि बीनकी ।
भरिरही भनक- बनक ताल-ताननि की
तनक - तनक तामें फनक चुरीन की ।।

देव ने कबीर जैसे संतों की शब्दावली का अवलम्बन करते हुए सुरति कलारी द्वारा पिलाई जानेवाली प्रेम- मदिरा का अभिनन्दन-वंदन किया है जिसके नशे में ध्रुव, प्रह्लाद आदि अपरिमित आह्लाद से भर गए थे , जिसने देव, मुनि और शंकर को भी विमुग्ध कर लिया है । अनुप्रास और यमक का भावानुरूप कलात्मक विन्यास इस नशे की अनुभूति को और तीव्र बना देता है:-

धुर ते मधुर मधु-रस हू विधुर करै ,
मधु-रस वेधि उर गुरु रस फूली है;
ध्रुव प्रह्लाद- उर हुव अह्लाद ,
जासों प्रभुता त्रिलोक हूं की तिल समतूली है ।
कदम-सी-वेद-मतवारे मतवारे परे मोहे मुनि-देव
देव शूली- उर - शूली है ।
प्यालो भरि देरी मेरी सुरति कलारी तेरी प्रेम,
मदिरा सो मोहिं मेरी सुधि भूली है ।।

इसी प्रकार एक छंद में कवि ने स्नेह नदी के महाओघ में मन-मंदिर के विलय का प्रभावशाली चित्रण किया है । 'विचित्र है यह घनश्याम रस'-- जब इसकी धारा सार वृष्टि होती है तो उसके पारावार में माया का परिवार सदा सदा के लिए निमज्जित हो जाता है ।

देव घनश्याम रसबरस्यो अखंडधार,
पूरन अपार प्रेम पूरन सहि परयो ।

विषै-बंधु बूड़े, मदमोह- सुतदवे देखि
अहंकार- मीत मरि मुरकि महि परयौ ।
आशा- त्रिसना-सी बहू- बेटी लै निकसी भागी
माया मेहरी पे देहरी पैन रहि परयौ ,
गयौ नहिं हेरौ, लयौ बन में बसेरौ, नेह-
नदी के किनारे मन मंदिर ढहि परयौ ।।

घनश्याम की इसी वर्षा का अनुभव सूर को हुआ था तभी उन्होंने भक्ति विगलित कंठ से गाया था---

श्याम गगन- घन घटा छई है ।
श्रुति की अच्छर श्याम देखियत, दीप-शिखा पर श्याम तई है ।
मैं बौरी की लोगन ही की श्याम पुतरिया बदल गई है ।
इन्द्र-धनुष को रंग श्याम हैं, मृग-मद श्याम काम विजयी है ।
नील कंठ को कंठ श्याम है मनो श्यामता बेलि नई है ।

देव ने इसी कोटि की रूप-रचना में सच्ची आत्म-ग्लानि का भी मार्मिक अभिव्यंजन किया है ---

ऐसो हौं जु जानतो कि जैहै तू बिषै के संग,
ऐरे मन मेरे हाथ पांव तेरे तोरतो ।
आजु लगि कति नर नाहन की नाहीं सुनी,
नेह सौं निहारि हारि वदन निहोरतो ।।
चलन न देतो 'देव' चंचल अचल करि,
चाबुक चेतावनीन मारि मुंह मोरतो ।
भारो प्रेम पाथर नगारो दै गरे सौं बाँधि,
राधावर बिरद के बारिद में बोरतो ।।

------ देव ।

पद्माकर को भी आत्मग्लानि की तीव्र अनुभूति हुई और तभी उन्होंने अत्यन्त व्यथित होकर अपने आप को यह चेतावनी दी है :--

वैस विलासिनि जाति वही उमही छिनही छिन गंग के धार सी ।
त्यौं पद्माकर पैसनियां अजहूं न भजे दसरत्थ कुमार सी ।।
वारपके थके अंग सबै मढ़ि मीच गरैहि परी हर हार सी ।
देख दशा छिन आपनी तू अब हाथ के कंगन कौ कहा आरसी।।

आत्म-समर्पण की जैसी भक्ति-विभोर भावना उनमें मिलती है, वैसी रीति-कवियों में विरल है --

आनन्द के कन्द जग ज्यावत जगत वंध ।
दशरथ नंद के निवाहे ही निबहिये ।।
कहै पद्माकर पवित्र पन पालिबे की ।
चौर चक्रपानि के चरित्रन को चहिये ।।
अवध बिहारी के विनोदन में बीधि बीधि,।
गीध गुह गीधे के गुनानुवाद गहिये ।।
रैन दिन आठौं याम सीताराम सीताराम
सीताराम सीताराम सीताराम कहिये ।।

पद्माकर ने भगवान राम के प्रति अखंड विश्वास और अविचलित धैर्य की भावना को बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है --

प्रलै के पयोनिधि लौं लहरैं उठन लागीं
लहरा लग्यौ त्यौं हौन पौन पुरवैया कौ ।
धीर भरी भांभरी विलौकि मंभधार परी
धीर न धराय पद्माकर खेवैया कौ ।।
कहां वार कहां पार जानी है न जात कछू
दूसरी देखात न रखैया और नैया कौ ।।
कहन न दैहै घेरि घाटहिं लगैहै धेरो
अमित भरोसो मोहि मेरे रघुरैया कौ ।।

-------- पद्माकर ।

इसी प्रकार की भाव-व्यंजना 'राजहंस' कवि में भी प्राप्त होती है --

आधि व्याधि विविध व्यथान की उपाधि मांहि
निपट विकल भम जीव जकरी सो है ।
फांसनि फंसो सो दुख गांसनि गंसो सो
असहाय मन-मीन ताते रेत में परो सो है ।।
संकट घटा में विज्जु विपत छटा में
कवि 'राजहंस' ऐसे हू पै धीरज धरो सो है ।
करुणानिधान ! नटनागर ! जगत पति
मोहिं तो तिहारो एक अमित भरोसो है ।

"------ बड़े बड़े विघ्न उपस्थित होने पर भी अपने व्यवसाय में अविचलित रखनेवाली मानसिक अवस्था का नाम धैर्य है ।[1] रति, क्रोध आदि में यह भाव सम्भवतः संचारी बनकर प्रयुक्त होता है । परन्तु जो संतोष तत्वज्ञान से प्राप्त होता है उसे संचारी के अन्तर्गत नहीं रख सकते हैं । प्रिय के दर्शन और वाणी से नेत्रों और श्रवणों को जो तृप्ति प्राप्त होती हैं उसे धृति या संतोष कहा जा सकता है । पद्माकर तथा राजहंस के उपर्युक्त छंद में धैर्य तथा निम्नलिखित छंदों में 'धृति' है :--

आई भले हौं चली सखियान में पाई गोविंद के रूप की फांकी
त्यों पद्माकर हार दियो गृहकाज कहा अरु लाज कहाँ की
है नख तें सिख लौं मृदु माधुरी बांकिये भौंहें विलोकनि बांकी
आजकी या छबि देखि भटू अब देखिबे कों न रह्यो कछु बाकी ।[2]

पद्माकर ने गंगा-लहरी में गंगा जी का रूप-वर्णन 'एकावली' अलंकार में किया है ---

---

१- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल --- रसमीमांसा पृष्ठ २२७

२- पद्माकर ---- जगद्विनोद-- ३३१ ,,

कूरम पै कोल: कोल्हू पै शेष कुंडली है ,
कुंडली पै फबी फैल सुफन हजार की ।
कहै पद्माकर त्यों फन पै फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है तिथि रजत पहार की ।।
रजत पहार पर संभु चतुरानन है ,
संभु पर फैल जटा जूट है अपार की ।
संभु जटा जूटन पै चंद की छुटी है छटा,
चंद की छटान पै छटा है गंगधार की ।।

----- गंगालहरी ।

पहले ही बताया जा चुका है कि रीतिकाल में राम और कृष्ण के अतिरिक्त अन्य देवताओं को केन्द्र बनाकर भी स्तोत्रात्मक साहित्य लिखा गया है । पद्माकर की गंगालहरी और ग्वाल की यमुना लहरी की भी चर्चा की जा चुकी है । थान कवि ने ह्रस्व वर्णों की मधुर मंजुल और ललित योजना द्वारा गंगा की बड़ी मनोहारी वन्दना की है --

कलुष- हरनि सुख-करनि सरन जन
परनि बरनि जस कहत धरनिधर ।
कलिमल - कलित बलित- अघ खगगन,
लहत परमपद कुटिल कपटतर ।।
मदन-कदन सुर-सदन बदन ससि ,
अमल नवल दुति भजन भगतवर ।
सुरसरि तव जल दरस परस करि ,
सुरसरि सुभग गति लहत अधम नर ।।

सरस्वती-वन्दना भी अपने पद-लालित्य, सावर्त्त अनुप्रास और यमक विधान के लिए प्रसिद्ध है --

दासन पै दाहिनी परम हंसवाहिनी है,
पोथीकर, बीना सुरमंडल मढ़त है ।

आसन कंवल, अंग अंबर धवल,

मुख चंद सो अवंल, रंग नवल चढ़त है ।

ऐसी मातु भारति की आरती करतधान

जाको जस विधि ऐसो पंडित पढ़त है ।

ताकी दया- दीठि लाख पाथर निराखर के,

मुखते मधुर मंजु आखर कढ़त है ।।

कुछ कवियों ने रामचंद्र जी की नाभि का वर्णन भी बड़ी मधुर, सुकुमार एवं प्रांजल भाषा में किया है --

प्रेमसखी मतिमंद महा सपने कबहूं नहिं देखन पाई ।

नाभिहि ते, उपज्यो विधि बापुरो जाइ कहा गुण चारि सोहाई।

बारहि बार विरंचि वधू सब ढूढिं थकी उपमा नहिं पाई ।

जानतराम लला रसखानि सिया शुम नाभि की सुंदरताई ।।

कविने नाभि की सौंदर्य व्यंजना के साथ साथ ब्रह्मा की उत्पत्ति की ओर भी संकेत किया है । हमारे धार्मिक ग्रन्थों में ब्रह्माकी उत्पत्ति भगवान् विष्णु की नाभि से मानी गई है । इस प्रकार कवि ने ब्रह्मा की उत्पत्ति के साथ-साथ त्रिदेवों की एकात्मकता का भी भाव स्पष्ट किया है ।

इसी प्रकार एक दूसरे छंद में राम की वनमाला की लावण्यता एवं आकर्षण की अभिव्यंजना की गई है ---

सोहत नील निचोलिनए घन अंतर में द्युति ज्यों चपला की ।

माथे अनेक अमोलन मे जिन छीनि लई छबि चंद्र कला की ।।

प्रेम सखी मुकुतागन स्वच्छ लसैं लसै विरची कमला की ।

दीठि छली न चली सिय के उर हार विलोकन रामलला की ।।

राम की हारावलि इतनी सुंदर है कि जगज्जननी सीता किसी प्रकार अपनी दृष्टि उस ओर से फेरना ही नहीं चाहती ।

रीतिकाल के स्तोत्र-रचनाकारों में मनियार सिंह का स्थान बहुत ऊँचा है । इन्होंने संस्कृत के महिम्न स्तोत्र का बड़ा सरस अनुवाद किया है ।

साथ ही इन्होंने शंकराचार्य की सौंदर्य लहरी के जोड़पर 'भाषा में सौंदर्य-लहरी' की रचना की है। इनकी इस कृति में सच्ची भक्ति का उद्रेक स्थान-स्थान पर परिलक्षित होता है और इनकी भाषा भी सानुप्रास, शिष्ट एवं परिमार्जित है। प्रसंगानुसार ओज गुण का भी समुचित समावेश हुआ है। 'सौंदर्य लहरी' में रूप घनाक्षरी में की हुई भगवती के चरणों की वंदना उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की जा रही है ---

तेरे पद-पंकज-पराग राज राजेश्वरी
वेद वंदनीय विरुदावलि बढ़ीरहै।
जाकी किनुकायी पाय धाता नै धरित्री रची,
जापै लोक लोकन की रचना कढ़ीरहै।
मनियार जाहि विष्णु सैवैं सर्व पोषत मैं
सैस हू के सदा सीस सहस मढ़ी रहै।
सोई सुरासुर के सिरोमनि सदाशिव के,
भसम के रूप ह्वै सरीर पै चढ़ी रहै।।

'हनुमत छबीसी' में हनुमान जी के रूप-वर्णन में रौद्र रस समन्वित ओज गुण की प्रधानता है ---

अभय कठोर बानी सुनि लछमन जू की
मारिवै को चाहि जौ सुधारी खल तरवारि।
वीर हनुमंत तेहि गरजि सुहासकरि,
उपट पकरि ग्रीव भूमि लै परै पछारि।।
पुच्छर्सो लपेटि फेरि दंतन दरदराह,
नखन बकोटि चोंथि दैत महि डारि डारि।
उदर विदारि मारि लुत्थन कौं टारि वीर
जैसे मृगराज गजराज डारै फारि फारि।।

भगवान के चरणों की वन्दना में भक्त-हृदय-भावुक कवियों ने चमत्कार पूर्ण कल्पना, अलंकार-योजना, और सरस सुकुमार शब्द-साधना तीनों को सार्थक

किया है । दीनदयाल गिरिका एक छंद प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है :--

कोमल मनोहर मधुर सुर तालसने,
नूपुर-निनादनि सों कौन दिन बोलि हैं।
नीके ममही के बुंद-बृंदन सुमोतिनको
गहि कै कृपा की अब चोंचन सों तोलिहै ।
नेम धरि छोम सों प्रमुद होय दीनयाल,
प्रेमकोकनद बीच कबधों कलोलि है ।
चरन तिहारे जदुवंस- राजहंस कब
मेरे मन मानस में मंद-मंद डोलि हैं ।

------ अनुराग बाग ।

कुछ कवियों ने चरणों की वन्दना में पूरे ग्रन्थ लिखे हैं । 'चरण-चंद्रिका' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है । शुक्ल ने इस के विषय में लिखा है ---"इसमें पार्वती जी के चरणों का वर्णन अत्यन्त रुचिर और अनूठे ढंग से किया गया है । इस वर्णन से अलौकिक सुषमा, विभूति, शक्ति और शान्ति फूटी पड़ती है । उपास्य के अंग में अनन्त ऐश्वर्य की भावना भक्ति की परम भावुकता के भीतर ही सम्भव है । भाषा लाक्षणिक और पांडित्यपूर्ण है । कवि ने चरणों की वन्दना में कहीं कल्पवृक्ष, कहीं अमृत सरोवर, कहीं आठों सिद्धियां और कहीं नेत्रों के उपमान लाकर उपस्थित कर दिए हैं :-

नूपुर बजत मनि मृग से अधीन होत,
मीन होत जानि चरणामृत झरनिको ।
खंजन से नचैं देखि सुखमासरद की- सी,
सचैं मधुकर से पराग केसरनि को ।।
रीझि - रीझि तेरे यह छबि पै,
तिलोचन के लोचन ये अवधारैं केतिक धानिको ।
फूलत कुमुद से मयंक से निरख नख
पंकज खिलैं लखि तरवा तरनि को ।।

---चरण चंद्रिका ।

कवि ने उपर्युक्त छंद में खंजन, मीन आदि उपमानों को एक ही साथ उपस्थित कर दिया है और स्वयं त्रिलोचन के नैत्र स्थितियों के अनुसार अपनारूप धारणकर लेते हैं। नूपुर की ध्वनि से नैत्र मृग के समान बनकर आनंद का अनुभव करने लगते हैं। चरणों की निर्मलता को शरद की सुषमा समझकर वे खंजन बन जाते हैं, चरण-रज को पराग समझकर भ्रमर, नखों को चंद्रतुल्य समझकर कुमुदरूप में और पग तल को सूर्य समझकर सरोज का रूप धारण कर लेते हैं।

कहीं कहीं कवि ने भगवती के चरणों की उपमा स्वर्गलोक से दी है--

गावैं मंजु घोसा-सी मधुर रत्ननूपुर
                    और कलपलता-सी पायजैब उमंगी रहै,
कामधेनु- थनसी सुपूरन गुलुफलाल,
                    उड़िन की छवि चिंता मनिसी रंगी रहै।
नंदन लैसरसे सुगंध रज राजै जाकी,
                    ऐरावत की सी गति सहज जगी रहै,
तेरे चंदमौलि मन भावती समावन ही
                    सिरी अमरावती की पावन लगी रहै।।
                                        ---चरण चंद्रिका।

नूपुर अप्सराओं के समान मधुर गान करते हैं, पायजेब कल्पलता के समान ही अत्यन्त शोभायमान हो रही है। गुल्फ कामधेनु के थन की भांति शोभायमान है और एड़ी चिंतामणि की समता करती है। चरणों की रज नंदन वन की सुगंधि से श्रेष्ठ है और उनकी गति से हाथी भी लज्जित होता है। इस प्रकार हे देवी! तेरे चरणों में स्वर्गलोक का समस्त वैभव विद्यमान है।

कुछ छंदों में कवि ने रूपक- प्रेमका परिचय दिया है। चरणों का वर्णन करते समय वह मन-आकाश, दया-मेघ, दु:खादि का अंत, वैभव-मयूरी का हर्ष एवं कीर्ति सरिता के प्रवाह आदि उपमान उपस्थित कर देता है--

तेरे दयाघन अंब गगन उपाधिन में ,
मायाकरि जाकी ओर उमणि परत है,
तुरत विलात पाप ताप दाप ताके दुख,
दारिद दुरासा ये जवासा से जरत है ।
संपति-मयूरी संग हरखित हित-मित्र,
मोर से विचित्र चहुं ओर विहरत है,
हीनपरी कीरति नदीलौं बढ़ि उठै बेग,
धीनपरे मागते तड़ाग से भरत है ।।

इसी प्रकार 'चरण चंद्रिका' में प्रसाद गुण भी सर्वत्र विद्यमान है । आराध्य भगवती देवी के प्रति भक्त के उठने वाले भावों का सुंदर एवं कलात्मक वर्णन करके कवि ने अपनी कला-चातुरी एवं शब्द-योजना का उत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित किया है । यद्यपि इसमें ब्रजभाषा के अतिरिक्त संस्कृत एवं फारसी के शब्द आ गए हैं किन्तु उनके प्रयोग से भाषा की रोचकता कम नहीं होने पाई है ।

पद-विन्यास की प्रौढ़ता और भाषा के सौष्ठव से परिपूर्ण मधुसूदन दास का 'सीताराम' के चरणों की वंदना कला की दृष्टि से उल्लेखनीय है:-

मृदु मंजुल सुंदर सब भांती । ससि-कर-सरिस सुभग नखपांती ।।
प्रणत कल्पतरु तर सब ओरा । दहन अज्ञ तम जन-चितचोरा ।।
त्रिविध कलुण कुंजर घनघोरा । जगत्प्रसिद्ध केहरि बरजोरा ।।
चिंतामणि पारस सुरधेनू । अधिक कोटि गुन अभिमत देनू ।।
जन-मन-मानस रसिक मराला । सुमिरन भंजन विपति विसाला ।।

----रामाश्वमेघ ।

जिस प्रकार देवी भगवती की वन्दना में कवियों ने अपने भाव-वैभव का प्रदर्शन किया है । उसी प्रकार विघ्नेश, गणेश जी के स्तवन में भी भावुक कवियों ने बड़ी चमत्कृत सूक्तियों का विधान किया है । गणपति की वन्दना में विरचित "दासजी" के निम्नलिखित छंद में अपन्हुति की

संसृष्टि का चमत्कार सहृदय सम्बन्धित है :--

एकरद है न सुभ्र-सारदा बढि आई
लंबोदर मैं विवेक- तरु जौहैं फल वसे कौ ।
सुंडा दंड फैलव हथ्यार है उदंड वौ,
राखत नतैव अघ-विघँन- असेस कौ ।।
मद कहैं भूलि ना फरत सुधा-धार यह
ध्यान -हीं ते ही कौं कूढ हरन कलेस कौ ।
दास पै बिर्जन विचारयौ तिहुँ तापन कौं,
दूरि कौ करन बारौ करैन गनैस कौ ।।
------ काव्य-निर्णय।[१]

गणेश की भांति ही 'दास जी' ने भगवान शंकर की वंदना-स्वरूप परिकर अलंकार में बड़ा ही चमत्कृत रूप उपस्थित किया है --

भाल मैं जाके कलानिधि है वहे साहब ताप हमारी हरैगौ ।
अंग है जाकौ विभूति भरी, वहै मौन मैं सम्पति भूरि भरैगौ ।।
घातक जो है मनोभव कौ जग घातक वाही के जोर जरैगौ ।
दास जू सीस पै गंग लिए रहै, वाकी कृपा कहौ को न तरैगौ ।

इस प्रकार रीतिकालीन स्तोत्र-साहित्य भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष की दृष्टि से बड़ा ही महत्वपूर्ण है । यद्यपि उसमें भक्तिकाल की सी आस्था एवं विश्वास की भावना का अभाव है परन्तु उसकी शब्द-योजना एवं कला-चातुरी उच्चकोटि की है । रीतिकालीन शास्त्रीय -पद्धति का पूर्ण प्रभाव इस काल के स्तोत्रों पर पड़ा और उनमें भी आलंकारिक चारुता एवं आकर्षण को स्थान मिला । जो स्तोत्रात्मक अंश शास्त्रीय ग्रन्थों में प्रसंगानुसार लिखे गए हैं उनकी कलात्मकता किसी से कम नहीं है ।

१- आचार्य भिखारी दास- काव्य-निर्णय पृ० २२५

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि आधुनिक काल में भारतेन्दु के उदय से स्तोत्र -काव्य-धारा में भी एक नया मोड़ आया। भारतेन्दु को सच्चा भक्त हृदय प्राप्त था इसलिए उन्होंने ऐसी स्तोत्रात्मक रचनाएं कीं जो अच्छे भक्त-कवियों के समकक्ष रखी जा सकती हैं । इनकी चर्चा भी पहले की जा चुकी है । रीतिकाल की स्तोत्रात्मक रचनाओं में अनुभूति पक्ष में जो अभाव आ गया था, भारतेन्दु जी ने उसे दूर किया। उनकी रचनाओं का उदाहरण भी पहले दिए जा चुके हैं । यह भी बताया जा चुका है कि इस काल में 'जननी जन्म भूमि' विषयक स्तोत्रों की रचना का सूत्रपात हुआ और ये प्रवृत्ति द्विवेदीकाल में जाकर विशेष विकसित हुई। द्विवेदीकाल में खड़ी बोली में काव्य-रचना का पूर्ण प्रचार हो गया था, किन्तु उसमें तब तक वैसा परिमार्जन न आ सका था जो ब्रजभाषा की रचनाओं में सहज उपलब्ध था । अतएव द्विवेदी काल तक कलापक्ष की दृष्टि से ब्रज भाषा की रचनाएं खड़ी बोली की रचनाओं से आगे हैं ।

भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग के ब्रज भाषा कवियों में रत्नाकर का स्थान सबसे ऊंचा है । उनकी रचनाओं में व्याप्त भक्ति-भावना का निदेशन करते हुए आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी ने लिखा है ----- 'उद्धवशतक में उनकी कविता अलंकार बहुल्य होते हुए भी पद्माकर के 'रामरसायन' से अधिक प्रौढ़ है । रीति-कवियों की अपेक्षा वे साधारणत: अधिक भावनावान् अधिक शुद्ध और गहन संगीत के अभ्यासी हैं । हम कह सकते हैं कि भक्तों और श्रृंगारियों के बीच की कड़ी रत्नाकर के रूप में प्रकट हुई थी । उनकी रचना में उनका नया अभ्यास, नया प्रबन्ध-कौशल, और नए बुद्धिवादी युग का व्यक्तित्व भी दिखाई देता है ।[1] उनकी भक्ति-भावना निश्चय ही भक्त कवियों के समकक्ष है । इसके अतिरिक्त उनकी सबसे बड़ी विशेषता उनके छंद की संरचना में विशेष रूप से व्यक्त होती है । उनकी एक एक पंक्ति में पारस्परिक सान्निध्य का जो गुण मिलता है वह प्राय: रीतिकाल के सिद्ध कवियों में सहज सुलभ नहीं है । उनका शब्द-शब्द सुप्रयुक्त और अन्तरंग गहन संगीत से

१- आचार्य नन्द दुलारे वाजपेई--- आधुनिक काव्य रचना और विचार, पृष्ठ ६१-६२ ।

आकूरित है ---

टूक - टूक ह्वै मन-मुकुर हमारो हाय,
चूकि हूं कठोर-बैन पाहन चलावौ ना ।
एक मन मोहन तौ बसिकै उजार्यो मोहिं,
हिय मैं अनेक मनमोहन बसावौ ना ।।

----- उद्धव-शतक ।

उन्होंने अपनी ब्रज-भाषा में संस्कृत की पदावली को इतने कौशल के साथ ग्रंथित किया है कि उसमें असाधारण औदात्य गुण तो आया ही है साथ ही साथ ब्रज बोली का सहज माधुर्य भी निखर उठा है। इसके निदेशन के लिए निम्नलिखित पंक्तियां पर्याप्त हैं -----

स्यामा सुघर अनूप रूप गुन सील सजीली ।
मंडित मृदु मुख चंद मंद मुसक्यानि लजीली ।।
कामवाम अभिराम सहस सोभा सुभ धारिनि।
साजे सकल सिंगार दिव्य हेरति हिय हारिनि ।।

----- गंगावतरण ।

जासौं जाति विषय-विषाद की बिवाई बेगि,
चोप-चिकनाई चित-चारु गहिबौ करै ।
कहै रतनाकर कवित्त-बर-व्यंजन मैं,
जासौं स्वाद सौगुनौ रुचिर रहिबौ करै ।।
जासौं जोति जागति अनूप मन-मंदिर मैं,
जड़ता-विषम-तम-तोम दहिबौ करै ।
जपति जसोमति के लाड़िले गुपाल जन,
रावरी कृपा सों सो सनेह लहिबौ करै ।।

-----उद्धव-शतक ।

इस काल में ब्रज भाषा में अन्य कवियों ने भी बड़ी सरस बंदनाएं

लिखी हैं । सिंहावलोकन शैली में लिखा गया 'दत्तजी' का सवैया विघ्नेघ पंचानन गणेश जी के व्यक्तित्व का परिपूर्ण चित्र उपस्थित कर देता है ---

लाल है भाल सिंदूर भरी मुख उक्त नाह तु बाहु विशाल है ।
शाल हैं शत्रुन के उर को उत सिद्ध चन्द्रकला धरे माल हैं ।।
माल है, दत्तजू सूरज कोटिकी कोटिन काटत संकट जाल है ।
जाल है बुद्धि विवेक न को यह पारवती को लडाइतो लाल है ।।

रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' की यह सरस्वती-वंदना अपनी चित्रात्मकता और ललित पद-व्यंजना के कारण बहुत दिनों तक सहृदयों का कंठहार रही है --

हरिजस पावस में कहरै सिखी सी तुही,
वेद कुसुमाकर में कूजति पिकीसी है ।
तू ही सुखदानी रसधर्म की कहानी माहि,
कर्म वीथिका में बानी दीपिका सीदी सी है।
नीति छीर धारा में उदारा नवनीत तू ही,
मेधा मेघमाला में लसति दामिनीसी है ।
ज्ञानकी प्रतिमा सुमति कविनाथनकी,
साधन की सिद्धि तेर हाथनविकीसी है ।।

-------- पूर्ण ।

अनूप शर्मा का प्रतीकात्मक शैली में किया गया भगवती दुर्गा का नख-शिख वर्णन बड़ा ही कलात्मक है जिसमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, संशोक्ति व वक्रोक्ति आदि अलंकारों का बड़ा ही मनोहारी प्रयोग हुआ है---

एक लोक लोचन द्विविध कर्म नाशता है,
करता त्रिनेत्र नम्र चार वर्ग- दाता है ।
अरि-गण का भी पंचता के पथ भेजता है,
षट-गुण-वाले सप्त-अर्थिका विधाता है ।

अष्टापद किरण-समूह युक्त भासता है,
नवरसवाली कीर्ति कवि को दिलाता है ।
दशव दिशाओं में प्रकाशवान राजता है,
एकादश रुद्र में प्रमोद प्रकटाता है ।।[1]

द्विवेदी युग में खड़ी बोली की जो स्तोत्रात्मक रचनाएं हुई हैं, उनमें करुणा का विशेष रूप से समावेश दिखाई पड़ता है क्योंकि इस युग का स्तोत्रकार आकांक्षा परक भाव-भूमिका को छोड़कर लोक परक भाव-भूमि पर अवस्थित होकर काव्य-रचना करता है । इसलिए उसकी रचनाओं में सामाजिक वेदना और देश की परतंत्रता के दु:ख की अभिव्यक्ति होती है । भगवान् से भी वह उनके निवारण के लिए प्रार्थना करता है । भारतेन्दु ने अपने विनय के पदों में --- कहां करुणानिधि केशव सोये ।

जागत अजहूं नाहिं जदपि बहु भारतवासी रोए ।--

----आदि --------राष्ट्रीयता के जिस करुण स्वर का संधान किया था वह स्वर इस युग में अधिकाधिक उद्रित होकर कवियों की वाणी से व्यक्त हुआ । ऐसी रचनाओं का कला पक्ष भी अपेक्षाकृत कुछ हीन हो परन्तु इनका भाव वैभव राष्ट्रीय -जीवन की बहुमुखी वेदना के अभिव्यक्ति के कारण बहुत समृद्ध रहा । ऐसी रचनाओं में कला-पक्ष की दृष्टि से जो अभाव था वह आगे चलकर छायावादी कवियों में अभिव्यक्त हुआ । इस युग की अधिकांश रचना मुक्तक रूपों में है जिसके दो भेद हैं -- स्फुट-मुक्तक और संयुक्त मुक्तक । डा० निर्मला जैन के शब्दों में ---- "एक ही विषय पर लिखे गए अनेक छन्दों को , जिनकी स्थिति निरपेक्ष है, हमने स्फुट मुक्तक और सापेक्ष स्थिति वाले एकाधिक छंदों को संयुक्त मुक्तक माना है"[2]। छायावादी युग का समस्त साहित्य इन्हीं दोनों रूपों में लिखा गया है ।

१- अनूप शर्मा --- शर्वाणी-- पृ० ३६४

२- डा० निर्मला जैन-- आधुनिक हिन्दी-काव्य में रूपविधाएं
पृष्ठ ३८८

छायावादी युग के प्रणेता प्रसाद जी के काव्य की मधुर अभिव्यंजना, शिल्प-विधान एवं भाषा -लालित्य उनके काव्य में कुशलता से व्यक्त हुआ है। कामायनी के प्रतीकों का अभिव्यक्तीकरण ओजपूर्ण और गम्भीर है। ऐसे विवेचन में प्रसाद जी की वाणी अपने पूर्ण मनोज्ञ रूप में मुखरित होती है। उनकी रचना का औदात्य निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है जिसमें उन्होंने शक्ति और शक्तिमान के सम्बन्ध का बड़ा ही उदात्त चित्रण किया है। वही शक्ति कामायनी में नटराज के रूप में स्पष्ट की गई है, जिसका ताण्डव नृत्य प्रसिद्ध है --

चिर-मिलित प्रकृति से पुलकित वह चेतन पुरुष पुरातन ,
निज शक्ति-तरंगायित था, आनंद अम्बुनिधि -शोभन ।
वह रजत गौर, उज्ज्वल जीवन आलोक प्रकाश का था कलोल,
मधुकिरणों की थी लहर लोल तन गया तमस था अलक जाल
सर्वांग ज्योतिमय था विशाल।
अन्तर्निनाद ध्वनि से पूरित, थी शून्य मेदिनी सूला क्ति,
नटराज स्वयं थे नृत्य-निरत, था अन्तरिक्ष प्रहसित मुखरित।

आनंद पूर्ण तांडव सुंदर
झरते थे उज्जवल श्रमसीकर
बनते तारा हिमकर दिनकर
उड़ रहे धूलिकण से भूधर

^ ^ ^ ^

संहार सृजन से युगल पाद
गतिशील अनाहत हुआ नाद
विद्युत कटाक्ष चल गया जिधर
कंपित संसृति बन रही उधर ।

-----कामायनी आनंद ।

प्रसाद जी की साधना लोक-कल्याण की भावना से ओतप्रोत है। इस लिए वे प्रेम-वेणु की स्वर लहरी में सम्पूर्ण संसार को वृन्दावन बनाने के लिए जीवनगीत सुनना चाहते हैं ---

मेरी आंखों की पुतली में
तू बनकर प्रान समाजारे ।
जिससे कन कन में स्पन्दन हो,
मन में मलयानिल चन्दन हो ।
करुणा का नव अभिनन्दन हो,
वह जीवन गीत सुना जारे ।
जिसमें अंकित हो मधु लेखा,
जिसको यह विश्व करे देखा
वह स्मृति का चित्र बनाजारे ।।

---- प्रसाद ।

निरालाजी की शब्द योजना, काव्य-माधुर्य, एवं शिल्प-विधान उनकी प्रत्येक रचना से स्पष्ट होता है । उनके गीतों में यदि एक ओर कला की उत्कृष्ट भावाभिव्यंजना के दर्शन होते हैं तो दूसरी ओर उसमें संगीत की मधुसिा का भी अनुभव किया जा सकता है । गीत का शब्द परिमार्जित भाषा में एक सुनियोजित योजना के आधार पर बढ़ता हुआ दिखाई पड़ता है । उनके `जागो जीवन धनिके ' गीत इस तथ्य को स्पष्ट करता है जिसमें लक्ष्मी को सम्बोधित करके भारत के ऐश्वर्य का स्मरण कराया गया है --

जागो, जीवन- धनिके ।
विश्व - पराय- प्रिय वणिके ।
दु:खभार भारत तम-केवल,
वीर्य -सूर्य के ढके सकल दल,
खोलो उषा - पटल निजकर ग्रथि
छबिमयि दिन- मणि के ।

गहकर अचल तृप्ति रंग रंगकर
यह जीवनोपाय भरदो घर
भारति भारत को फिर दो वर
ज्ञान-विपर्यि- रवनिके ।

दिवस-मास-ऋतु-अयन-वर्ष भर
अतुल-वर्ण युग-योग निरन्तर
बहते छोड़ शेष सब तुमपर
लव-निमेष-कणिके ।।

कवि ने जीवन धनिके के रूप में लक्ष्मी को सम्बोधित कर भारत के पराभव की ओर संकेत किया है । भारत इस समय अन्धकार ग्रस्त है । उसके वीर्यरूप सूर्य की समस्त कलायें नष्ट हो गई हैं । हे छविमयि! भारत को पुनः वैभवयुक्त करो । प्रत्येक भारतवासी को सर्व गुण-सम्पन्नकर उसे गौरवशील बनने की सामर्थ्य प्रदान करो । संसार की समस्त शक्ति तुम्हीं में विद्यमान है जो क्षण मात्र में प्राप्त की जा सकती है । यद्यपि भारत की लक्ष्मी शक्ति का लघुरूप रह गया है परन्तु विराट रूप अब भी स्थिर है । भारत का इतिहास इसका साक्षी है । उसमें नव जागरण लाओ ।

इस प्रकार इस गीत में लक्ष्मीके विराट रूपका अनुभव 'लघु रूप' का अनुभव किया गया है । यहाँ निरालाजी की कला पटुता का प्रमाण है ।

कहीं कहीं विराट चित्रों की भी अभिव्यक्ति की गयी है । लौटती हुई निराशवानर सेना के मध्य में राम का रूप-वर्णन विराट उपमानों के माध्यम से किया गया है, जिसमें कवि की मूर्ति विधायनी कल्पना का सहज दर्शन किया जा सकता है । डा० निर्मला जैन ने लिखा है --- "इन पंक्तियों में कवि की कल्पना विराट ही नहीं अर्थगर्भित और साभिप्राय है । राम के प्रशस्य पौरुष्य दीप्त व्यक्तित्व का उचित उपमान दुर्गम पर्वत है और उस पर उतरने वाला नैशान्धकार उनके नैराश्य-आवृत क्लान्त हृदय की व्यंजना करता है--

दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल,
फैला पृष्ट पर, बाहुओं पर वक्ष पर विपुल ।
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार,
चमकती दूर ताराएं ज्यों हों कहीं पार[१]।।

---अनामिका पृ० १४६

पन्त जी की रचनाओं में सरस भाषा, सार्थक शब्द-सृष्टि और छंदों की सुगेयता सर्वत्र देखी जा सकती है । भावों का भाषानुकूल प्रयोग उनकी कला चातुरी का सहज प्रमाण है । आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी ने लिखा है --- "भाषा और भाव अलग अलग नहीं-- बाह्य और अन्तरंग नहीं-- वरन् काव्य- का सर्वांगीण विकास करते देखे पड़ते हैं[२]। उनकी विचार प्रतिष्ठा सामूहिक चेतना एवं विकास पर आधारित है । परन्तु साथ ही साथ उनकी आध्यात्मिकता में पूर्व प्रणति समर्पण और आस्थावादी आस्तिकता का स्वर मुखरित होता है। 'ग्राम्या' की 'विनय' शीर्षक कविता में एतद् विषयक भाव पूर्ण रूपेण देखा जा सकता है ::--

मनुजों की लघु चेतना मिटे, लघु अहंकार,
नवयुग के गुण से विगत गुणों का अन्धकार ।
हो शान्त जाति-विद्वेष, वर्ग गत रक्त समर,
हो शान्त युगों के प्रेत, मुक्त मानव अन्तर ।
संस्कृत हों सब जन, स्नेही हों स हृदय सुंदर,
संयुक्त कर्म पर हो संयुक्त विश्व निर्भर ।

^ ^ ^ ^

हो धरणि जनों की, जगत् स्वर्ग, जीवनका घर,
नव मानव को दो प्रभु ! अब मानवता का वर ।

१- डॉ०निर्मला जैन----- आधुनिक हिन्दी कविता में रूप-विधान,पृ० ३१२

२- आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी -- आधुनिक काव्य- रचना और विचार, पृष्ठ १५६

वीणा की रचनाओं में जहाँ पंतकी आरम्भिक नवीन कल्पना, मार्दव और अभिनव बिम्ब प्रयुक्त हुए हैं वहां उनका विचार वैचित्र्य एवं निश्चित लक्ष्य का सूत्रपात करता है ---"वाणी-वंदना" गीत में दो चित्र उपस्थित किए गए हैं। प्रथम है सम्पन्नता के दंभ का तथा दूसरा है अकिंचनता के दैन्य का । सरस्वती अकिंचनता के दैन्य से ही प्रसन्न होकर साधक के गले का हार बनती हैं ---

स्वर्ण-सौध-- शुचि बनवाये थे,
मैंने कितने उच्च, अपार ,
विप्र बालकों ने गाए थे,
तेरे गुण गण जहां उदार,
अगणित मुद्रा दान दिए औ
किया सभी कुछ शिष्टाचार,
किंतु वहां मां ! नहीं सुनाई तूने निज नूपुर झंकार ।

^ ^ ^ ^

हाय ! अन्त में अवनत-वंदना,
अश्रु -लोचना हो लाचार,
अतिशय दीना, विभव-विहीना,
हो जब मैंने सर्व प्रकार,
क्षीण सुधाकर की छाया में
नलिनी वन की करुण पुकार
मां तब तूने मुझे दिखाई अपनी ज्योतित छटा अपार [1]।

---------- वीणा ।

महादेवी जी के गीतों में निपुण कल्पना, उक्ति चातुरी एवं भाव पूर्ण योजना सर्वत्र मिलती है । डा० देवराज ने लिखा है ---"कला सौष्ठव का बहुत ही परिष्कृत एवं मनोहारी रूप महादेवी जी के संगीत-विधान में मिलता है । अन्य छायावादी कवियों की रचना में मधुर ध्वनि एवं श्रुति-सुखद पद-योजना का संगीत है, इसके विपरीत महादेवी जी में ध्वनियों के लयपूर्ण संगठन का मार्मिक

१- सुमित्रानन्दन पंत --------- पृष्ठ ७२-७३

संगीत है । ---- महादेवी ने बहुत अधिक छंदों का प्रयोग नहीं किया है किन्तु थोड़े ही छन्द-रूपों की परिधि में उन्होंने जितनी लयात्मक विविधता का विधान किया है वह अद्भुत है ।[1] भावों की वैविध्यता और काव्य की मनोहारिता महादेवी जी में उच्चकोटि की है ---

देव अब वरदान कैसा ?
बेध दो मेरा हृदय माला बनूं, प्रतिकूल क्या है।
मैं तुम्हें पहचान लूं इसकूल तो उसकूल क्या है।
छीन सब मीठे क्षणों को, इन अथक अन्वेषणों को
आज लघुता ले मुझे दोगे निठुर प्रतिदान कैसा ?
जन्म से यह साथ है मैंने इन्हीं का प्यार जाना।
स्वजन ही समझा दृगों के अश्रु को पानी न माना।
इन्द्र-धनु से नित सजी-सी, विद्यु हीरक से जड़ी-सी।
मैं भरी बदली रहूं चिर मुक्ति का सम्मान कैसा ?

----यामा ।

:: रस ::

यह संकेत पहले ही किया जा चुका है कि स्तोत्रात्मक काव्य को जिसे भागवत काव्य भी कह सकते हैं लक्ष्यकर रस सम्बन्धी गम्भीर चिंतन किया गया है । इनमें कौन सा रस माना जाय यह प्रश्न भक्तों, सन्तों और आचार्यों ने उठाया है और अनेक प्रकार के इसके उत्तर दिए हैं । सबसे पहले लौकिक रस चिंतकों ने देवता विषयक रति को भाव मात्र माना है और उसे रस निष्पत्ति कराने में असमर्थ घोषित किया है । ऐसे भक्तों का विवरण प्रस्तुत करते हुए एक विद्वान ने लिखा है ------ भक्ति या वात्सल्य की बातों से तदनुरूप भावों का संचार अन्य हृदयों में नहीं होता । यदि मान भी लिया जाय कि किसी को भक्ति करते देख दूसरे के हृदय में किसी अंश तक उसका भाव जाग्रत होता है तो वह भाव के साधारणीकरण का रूप नहीं कहा जा सकता । भक्ति की अवस्था में हम भक्ति-भाजन से ऐसा सम्बन्ध स्थापित करते हैं, जो वैयक्तिक के

१- डा० देवराज- साहित्य-चिंता ।

के अन्तर्गत ही पड़ता है । आत्म-निवेदन की अवस्था में यद्यपि भक्ति के द्वारा जीवन के स्वार्थ का बहुत अंशों में परिहार हो जाता है फिर भी भजनीयसे उसका सम्बन्ध होता है । वह सबका समान रूप से नहीं हो सकता। भाव का रस रूप होने के लिए आलंबन का साधारणीकरण आवश्यक शर्त है ।[१] परन्तु जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि वैष्णव भक्तों ने प्राकृत वस्तु मात्र और प्राकृत काव्य में इसका अस्तित्व स्वीकार किया है । इन लोगों ने विषय रस को अनास्वाद्य और अमूर्तिमान घोषित किया है ।[२] और भक्ति-रस को ही आस्वाद्य माना है । इसी के आधार पर 'चिन्मय रस-सिद्धान्त' की स्थापना की गई है जिसके अनुसार केवल श्री कृष्ण ही रसमार्ग के आश्रय माने गए हैं[३] और यह भी बतलाया गया है कि वे इस रस के प्रतीक भक्तों की चैतन्यात्मक इन्द्रियों में ही हैं ।[४] इन लोगों ने तो यहां तक कहा है कि चिन्मय रस की निष्पत्ति की आविर्भाव प्रक्रिया भी प्राकृत रस से सर्वथा भिन्न प्रकार की होती है ।[५] भगवद् भक्ति चन्द्रिका के रसोल्लास में भक्ति को रस माना गया है ---

परत्रानां संगं जनपतिरतियां नियमतः
परस्मिन्नो वास्मिन् समरसतया पश्यति इयम् ।
पर प्रेमाद्वैयं भवति परमानंद मधुरा
परामक्तिः प्रोक्ता रसइति रसास्वादन जणैः ।।

---- भगवद्भक्ति चन्द्रिका ।

मधुसूदन सरस्वती का विचार है--------"अन्य रसों में पूर्ण सुख का स्पर्श नहीं रहता जब कि भक्ति-रस नितान्त रूप से सुखमय है । यही कारण है कि इसके सम्मुख अन्य रस क्षुद्र प्रतीत होते हैं ।[६] भक्तियोग स्वयं समस्त रसों

१- श्री कुद्धिनाथ झा-- शाण्डिल्य-साधना की पृष्ठभूमि -- पृ० १७८-१७६
२- विषय रसस्था मूर्ति भत्वं वदत सत्यमेव वदन्ति।
३- नंद नदन एव स्यावस्तयो रस बल्लभ ।
४- प्रतीयते भक्तानां चैतन्यात्मक स्विन्द्रि येणु ।
५- निसर्गाद्भियोगाज्ज संसर्गाभियानतः । उपमाध्यात्मविषयैः प्राद्भूतायवेद्रति।
६- कान्तादि विषया वा रसाधा तत्र नेदृशम् ।
रसत्व पुष्यते पूर्ण सुख स्पर्शित्व ससारत् ।
अर्थौतेभ्यः इकादित्य प्रभैव बलवतरा ।।
नारायण भट्ट पादाचार्य--भक्ति रस तरंगिणी ।

से समन्वित है और अन्य रसों की भांति विभावादि से संयुक्त होकर रसस्वरूप प्राप्त करता है। देवादि से सम्बन्धित होने के कारण इसे रति-भाव माना गया है परन्तु परमात्मा से नियोजन करने पर यही रति 'भक्ति रस' की संज्ञा प्राप्त करती है। रस तरंगिणीकार भानुदत्त ने भी रसों की अलौकिक और लौकिक दो कोटियां मानी हैं। लौकिक रस को उन्होंने 'माया रस' कहा है और इसी माया रस में श्रृंगारी आदि रसों के भाव संचारी बनकर आते हैं। अलौकिक रस को उन्होंने मोटे तौर से शान्त रस की अभिधा प्रदान की है। इसी के अन्तर्गत समस्त भक्ति साहित्य और स्तोत्र-साहित्य का समाहार हो जाता है।

कतिपय रस चिन्तकों ने भी इसी से मिलते जुलते विचार व्यक्त किए हैं। डा० वाटवे ने अपने 'रस-विमर्श' में भक्ति को एक पृथक रस माना है[1]। भक्ति का आरम्भ आदि काल से ही हुआ है और क्रमशः प्रतीक पूजा ने मनुष्य के रूप में देवता की कल्पना की और उससे अनेक अलौकिक सम्बन्ध भी स्थापित किए। इसके अनुरूप नव रसों की भी कल्पना हुई जिसमें श्रृंगार को महत्वपूर्ण माना गया जो मधुर रस के नाम से प्रचलित हुआ। कृष्ण-गोपिकाओं के परमात्मा तथा आत्मा के सम्बन्ध के रूपक जोड़ लिए गए और लौकिक श्रृंगार भक्ति के उन्नत रूप में उपस्थित हुआ। वल्लभ, चैतन्य, राधावल्लभ आदि सम्प्रदायों में ही नहीं राम-सीता की भक्ति और सूफी सम्प्रदाय में भी यही भावना दिखाई देती है।[2] स्तोत्र-साहित्य इसका प्रमाण है कि भक्तों ने भक्ति के सामने क्षुधादि को भी नगण्य माना है। अतः देवता विषयक 'रति' को भक्ति को स्थायी भाव मानना चाहिए। जो विद्वान् यह मानते हैं कि स्तोत्र-साहित्य का मूल रस शान्त है वे यह भूल जाते हैं कि शान्त रस में 'भाव-प्रतीति' संयमित और नियंत्रित होती है जब कि 'भक्तिरस' में इसकी तीव्रता होती है। अतः सार्वभौमिकता तथा उत्कटता की दृष्टि से भक्ति-रस

१- डा० आनंद प्रकाश दीक्षित --- रस सिद्धान्त, स्वरूप विश्लेषण पृ० २६०
२- डा० आनंद प्रकाश दीक्षित --- रस सिद्धान्त, स्वरूप विश्लेषण पृ० २६२

शान्त की अपेक्षा श्रेष्ठ है ।[1] भक्तिरस में सभी रस किसी न किसी रूप में समाविष्ट होते रहते हैं । क्या वात्सल्य, क्या शान्त और क्या श्रृंगार सभी भक्ति के ही अंग हैं । अतः भक्ति रस ही सब रसों में श्रेष्ठ है और स्तोत्र-साहित्य का मूल रस है । डा० आनंद प्रकाश दीक्षित ने 'भक्ति-रस' के सम्बन्ध में लिखा है ------ "भक्ति रस के समान आस्वाद्य, मोक्षोपकारक, बहुजन सुलभ, वाङ्मय परिपुष्ट व संस्कृत साहित्यशास्त्र तथा मानस शास्त्र की कसौटी पर पूर्णतया खरा उतरने वाला रस न मानने का कोई कारण नहीं है । विपुल धार्मिक तथा साहित्यिक सामग्री भक्ति के संबंध में होते हुए भी जो रस को अस्वीकार किया जाता रहा है उसका एक मात्र कारण परम्पराभिमान ही हो सकता है, अन्य नहीं ।[2]

डा० दीक्षित ने श्रृंगार, शान्त, अद्भुत आदि रसों के साथ 'भक्तिरस' के तारतम्य का सूक्ष्म विवेचन किया है । उदाहरणस्वरूप 'अद्भुत रस' के साथ भक्तिरस के अनुराग और श्रद्धा के साथ-साथ आत्महीनता का भी भाव होता है । भक्ति में भक्त को आलम्बन का भाव ज्ञात रहता है और आराध्य की विभिन्न लीलाओं का वर्णन अत्यन्त ही मनोज्ञ अवस्था में किया जाता है । जब भक्त उन लीलाओं का वर्णन करता है तो उसके हृदय में भक्ति का आवेश उत्पन्न होता है और इस प्रकार कभी कभी वह विस्मयकारी वर्णन भी करता है । इस प्रकार अनुराग से परिपूर्ण होने के कारण अद्भुत भी संचारीभाव होकर आता है । सूर के निम्नलिखित पद से यह बात सिद्ध होती है --

चरन गहे अंगुठा मुखमेलत ।
नंद घरनि गावति, हलरावति पलना पर किलकत हरि खेलत ।
जो चरणारविंद श्री भूषण उरतें नेकु न टारति ।
देखौं धौं का रस चरनानु में मुख मेलत करि आरति ।
जा चरणारविंद के रस कौं सुर नर करत विवाद ।
यह रस है मोकौं अति दुर्लभ तातें लेत सवाद ।।

सूरदास प्रभु असुर निकंदन, दुष्टन के उर आल ।

1- डा० आनन्द स्वरूप दीक्षित- रस सिद्धान्त, स्वरूप विश्लेषण पृ०२६३
2- ,, ,, ,, ,, ,, पृ०२६४-६५
3- ,, ,, ,, ,, ,, पृ०२६०

इस प्रकार के अद्भुत लीला-वर्णन के मूल में अनुराग और श्रद्धा का ही भाव है जो 'भक्ति-रस' की उत्पत्ति करता है न कि अद्भुत रस की ।[1]

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि लौकिक साहित्य से निष्पन्न रस तथा भागवत काव्य से निष्पन्न रस के आस्वाद में विभिन्न कोटि के सहृदयों को गुणभेद अथवा मात्रा भेद का सूक्ष्म अनुभव बराबर होता रहा है । रूप गोस्वामी आदि आचार्यों ने इस भेद को तात्त्विक माना है और कतिपय अन्य आचार्यों ने उसे केवल मात्रा का भेद कहा है ।[2] तात्पर्य यह कि दोनों प्रकार की रसानुभूति में किसी न किसी प्रकार का अन्तर मानने वाले विद्वान् सदा रहे हैं और अब भी हैं । यह स्थिति रसानुभूति की विविध अवस्थाओं की उपस्थिति का प्रमाण मानी जा सकती है । स्वयं आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी मध्यम कोटि की रसानुभूति की अवस्थिति स्वीकार करके उसकी एकाधिक अवस्थाओं का होना मान लिया है । इसका सबसे बड़ा प्रमाण उच्चकोटि के सहृदय का प्रशस्त हृदय भी माना जा सकता है जो नवरस संकुल लौकिक काव्य को छोड़कर अलौकिक भागवत काव्य में ही रमाण रहता है। श्रीमद्भागवत में कहा गया है ---

> मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा न कथ्यते यद् भगवानधोक्षजः ।
> तदेव सत्यं तदु हैवमंगलं तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ।।४८।।
> तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ।
> तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ।।४९।।[3]

पुण्य श्लोक भागवतकार ने लौकिक साहित्य को असत कथा और मिथ्यागिरा कहा है और भगवद् गुणोदय से परिपूर्ण वाणी को ही सत्य शिव सुन्दर और नवं नवं रुचिरं रम्यं माना है । गोस्वामी तुलसीदास ने भी

१- डॉ॰ आनन्द प्रकाश दीक्षित वही पृ॰ ५०

२- डा॰ फतहसिंह --- कामायनी सौंदर्य पृ॰ १५६

३- श्रीमद्भागवत, द्वादश स्कंध, अध्याय १२ श्लोक सं॰ ४८, ४९

इसी स्वर में स्वर मिलाते हुए कहा था --

कीन्हें प्राकृत जन गुन माना,
सिरधुनि गिरालागि पछिताना ।
राम चरित्र बिनु सर अन्हवाये,
सो श्रम जाहि न कोटि उपाये ।।[1]

तात्पर्य यह है कि भागवत काव्य में लौकिक काव्य से भिन्न रसानुभूति को मानने वालों की परम्परा बड़ी ज्योतिर्मयी है और इस परम्परा में सबसे नयानाम अरविंद का है जिन्होंने यह भविष्यद्वाणी की है कि अतिचेतन अथवा अधि की अवस्था का काव्य आज के काव्य से सर्वथा भिन्न कोटि का होगा । अरविन्द ने जिसे अतिमानस की अवस्था का काव्य घोषित किया है उसकी झांकी उच्चकोटि के भक्तों और संतों के लिखे गए स्तोत्रों में निश्चय ही मिलती है ।

प्रसिद्ध वैदिक विद्वान डा० फतहसिंह जी ने रसानुभूति स्तर भेद के अनुसार बड़ा वैज्ञानिक विवेचन किया है । उन्होंने बताया है कि काव्यों के चार भेद किए जा सकते हैं :--

१- संचारीकाव्य- जो केवल क्षणिक भावों का उद्रेक कर सकते हैं ।
२- स्थायीकाव्य- जो स्थायी भावों का विभावन कर सकते हैं ।
३- रसकाव्य,- जो उक्त भावों को अत्यधिक तीव्रतथा तरल करके उन्हें रसत्व प्रदान कर देते हैं ।
४- एक रसकाव्य- जो अनेक रसों की परिणति केवल एक रस में कर सकता है । वास्तव में इस प्रकार का कोई काव्य रस-काव्य से भिन्न नहीं होता, अपितु रस-काव्य ही काव्यास्वादक के सहृदयपन, आस्वादन-प्रयत्न आदि अनेक परिस्थितियों के कारण रस मात्र की अनुभूति कराने में समर्थ हो जाता है[2]।

१- बालकाण्ड
२- डा० फतहसिंह -- कामायनी सौंदर्य पृष्ठ १५६

पूर्ववर्ती अध्यायों में जिस स्तोत्र-साहित्य का विवेचन किया गया है वह काव्य के इन चार भेदों में अन्तर्भूत किया जा सकता है । केवल परम्परा पालन के लिए जो मंगलाचरणात्मक अथवा उपसंहारात्मक वंदनाएं लिखी गई हैं तथा बहुत सी सकाम स्तोत्रात्मक रचनाएं संचारीकाव्य के वर्ग में रखी जा सकती हैं क्योंकि उनमें केवल क्षणिक भावों का उद्रेक करने की पात्रता होती है । रीतिकाल के पद्माकर जैसे रस सिद्ध कवियों की स्तोत्रात्मक रचनाएं जिनमें अधिकांश सकाम हैं, दूसरे स्थायी काव्य के वर्ग में परिगणित हो सकती हैं । इनमें स्थायी भाव के विभावन की योग्यता होती है और इनमें से देव जैसे कवि की कुछ रचनाएं तीसरे वर्ग के रस-काव्य की सीमा का भी स्पर्श कर लेती हैं । भक्तों और संतों की श्रेष्ठ रचनाएं रस काव्य अथवा एक रसकाव्य के अन्तर्गत आती हैं । वस्तुत: उच्चतम कोटि के स्तोत्रों में उस रस की उपलब्धि होती है जिसका स्वरूप निरूपण तैत्तरीय उपनिषद् में इस प्रकार किया गया है :--

रसो वै स: । रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनंदी भवति । को ह्येवान्या-
त्क: प्राण्यात् । यदेष आकाश आनंदोनस्यात् । एष ह्येव नंदयति ।।
--- (तै०उ० २०७) ।

इस रस दृष्टि का स्पष्टीकरण करते हुए पंडित प्रवर आचार्य बल्देव उपाध्याय ने लिखा है ---"विश्व में जितने रचनात्मक तथा रसात्मक कार्यकलाप हैं वे इस आत्म शक्ति के ही विभिन्न तथा विचित्र स्फुरण है । आत्मा की ही आनंद रूपता से विश्व में आनंद रूपता है । क्या चित्रकारी, क्या स्थापत्य-कला, क्या कविता, क्या संगीत - सब ही इसी आनंदमय रूप की अनुभूति के भिन्न भिन्न साधन तथा उपाय हैं । अत: भारती आलोचकों की दृष्टि में कला की रचना आत्मशक्ति की स्फुरण है । काव्य के निर्माण में भी यही प्रेरक शक्ति है । आत्मा का स्वरूपोन्मेष काव्य का प्राण है । आनंद का उन्मीलन ही काव्य का उद्देश्य तथा सुख पूर्वक चतुर्वर्ग की प्राप्ति ही काव्य का उच्च प्रयोजन है ।[१] श्रेष्ठ स्तोत्र-काव्य में आत्म शक्ति का सच्चे

१- बल्देव उपाध्याय ------ काव्यानुशीलन

पृष्ठ १८-१९ ।

विचित्र स्फुरण होता है । ऐसा काव्य आत्मा की आनन्द रूपता से उल्लसित रहता है । वह विश्व के विविध रूपों में आनंदमयता की अनुभूति करता है और आत्मा का स्वरूपोन्मेष भी वस्तुत: उसके द्वारा प्राय: अधिक होता है । श्रेष्ठ स्तोत्रों के द्वारा आनंद का उन्मीलन और चतुर्वर्ग की प्राप्ति अर्थात् श्रेय और प्रेय दोनों की सिद्धि एक साथ हो जाती है।